वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

ॐ

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६१ अंक ८
अगस्त २०२३

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६१

अंक ८

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

श्रावण, सम्वत् २०८०

अगस्त, २०२३

अनुक्रमणिका

* उठो, जागो और कितने दिन सोओगे? : विवेकानन्द ४१४
* रक्षाबन्धन (स्वामी तन्निष्ठानन्द) ४१७
* भगवान ने हमें आवश्यक सब कुछ दिया है (स्वामी सत्यरूपानन्द) ४२०
* रामकृष्ण संघ : एक विहंगम दृष्टि (स्वामी पररूपानन्द) ४२१
* (बच्चों का आंगन) धीरज का अदम्य साहस (श्रीमती मिताली सिंह) ४२६
* श्रीरामकृष्ण का आकर्षण (स्वामी अलोकानन्द) ४२८
* (युवा प्रांगण) रानी लक्ष्मीबाई की हमशक्ल झलकारी बाई (स्वामी गुणदानन्द) ४३४
* स्वामी विवेकानन्द और सुभाषचन्द्र : वीरयोद्धा (स्वामी सुपर्णानन्द) ४३६
* (कविता) भगवति ! भारत एक हृदय हो (बैजनाथ प्रसाद शुक्ल) ४१९
* (कविता) प्यारा भारत देश हमारा (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ४१९
* (स्तुतिः) शिवचामरचर्या (डॉ. सत्येन्दु शर्मा) ४२५

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ४१३
पुरखों की थाती ४१३
सम्पादकीय ४१५
प्रश्नोपनिषद् ४२७
सारगाछी की स्मृतियाँ ४४१
श्रीरामकृष्ण-गीता ४४४
रामराज्य का स्वरूप ४४५
गीतातत्त्व-चिन्तन ४४८
साधुओं के पावन प्रसंग ४५१
समाचार और सूचनाएँ ४५५

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : **०९८२७१ ९७५३५** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति १७/–	१६०/-	८००/-	१६००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	५० यू.एस. डॉलर	२५० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिये	२००/–	१०००/–	

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

इस मण्डप में सुशोभित स्वामी विवेकानन्द की यह प्रतिमा रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर के प्रांगण में स्थित है। इस प्रतिमा का अनावरण रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गौतमानन्द जी महाराज द्वारा दिनांक ८ जुलाई, २०२२ को किया गया था।

यह प्रतिमा आश्रम के पुस्तकालय में प्रतिदिन अध्ययन हेतु आनेवाले विद्यार्थियों को अनायास ही प्रेरणा प्रदान करती है। इसके साथ ही आश्रम के मुख्य द्वार से प्रवेश करनेवाले दर्शनार्थियों के लिए विशेष आकर्षण तथा श्रद्धा का केन्द्र है।

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) **विवेक ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमितता के कारण कई बार पत्रिका नहीं मिलती है। अतः पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक-विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे अनेक सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है।** पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। **अंक उपलब्ध रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जायेगा।**

(४) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

अगस्त माह के जयन्ती और त्यौहार

१५	स्वतन्त्रता दिवस
३१	स्वामी निरंजनानन्द, रक्षाबन्धन
१२,२७	एकादशी

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री संजय मोरे, थाणे (महा.)	1,100/-
श्री प्रणव कुमार अंबोली, खारघर, मुम्बई (महा.)	1,521/-
श्री अनुराग प्रसाद, गाजियाबाद (उ.प्र.)	9,401/-
,, ,,	18,001

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग-कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
७०७.	श्री संजय मोरे, थाणे (महा.)	गवर्मेन्ट इन्टर कॉलेज,पलटनबाजार,खत्यारी,अलमोड़ा (उ.ख.)

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर' !

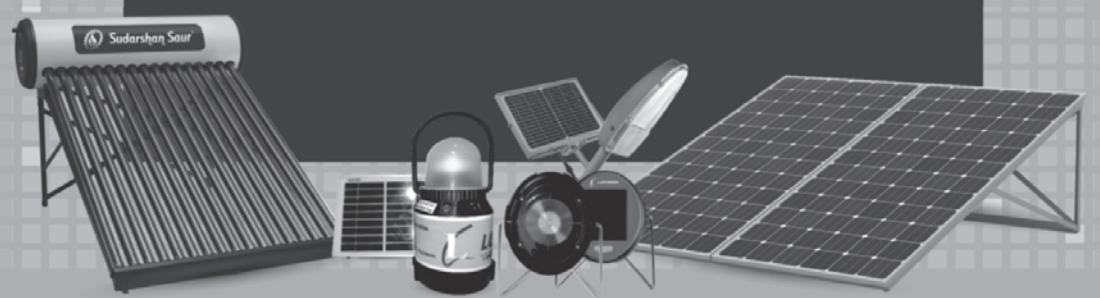

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६१ **अगस्त २०२३** **अंक ८**

श्रीविवेकानन्द-स्तुतिः

दधद् दिव्यज्योतिः परमरमणीयं नयनयोः
प्रसन्नास्यः सौम्यो मुनिकनकशोभाधरवपुः ।
सुधीः सत्यद्रष्टा भुवनवरणीयः श्रुतिधरो
विवेकानन्दोऽसौ मनुजतनुधारी स्मरहरः ।।

– जिनके दो नेत्र परम रमणीय दिव्य ज्योति से उद्भासित थे, जिनका मुखमंडल प्रसन्न और प्रफुल्ल था, जिनके शरीर में मुनियों के समान स्वर्ण की दीप्ति थी, जो सद्बुद्धिसम्पन्न, सत्यद्रष्टा, विश्ववन्द्य एवं श्रुतिधर थे, वे ही विवेकानन्द मनुष्यदेहधारी साक्षात् महादेव हैं।

किशोरो ध्यानस्थो भुजगभयशून्यो ह्यविचलो
युवा दण्डी वैश्वानरसदृशदीप्तिर्भुवि चरन् ।
स्वधर्म-भ्रष्टानां कलुषितधियां त्राणनिरतो
विवेकानन्दोऽसौ गहनतिमिरे भास्वररविः ।।

– जो किशोरावस्था में ध्यानस्थ होने पर सामने से आते हुये उठे हुये फनवाले विषधर सर्प को देखकर भी निर्भय एवं अविचलित थे, यौवन में दण्ड धारण कर संन्यासी वेश में अग्नि देव के समान दीप्तिमान होकर जो संसार में विचरण करते, स्वधर्म भ्रष्ट कलुषित चरित्रवाले व्यक्तियों का जो सदा परित्राण करते, वे ही विवेकानन्द अज्ञानान्धकार में उज्ज्वल सूर्य के सदृश थे।

पुरखों की थाती

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परामृतम्।।८०२।।

– परमात्मा का दर्शन हो जाने के बाद, जब देह से अहंता का भाव गल जाता है, तब व्यक्ति का मन – जहाँ कहीं भी जाता है, वहीं-वहीं उसे परम अमृतत्व की अनुभूति होती है।

देहीति वचनद्वारा देहस्था पञ्च देवताः।
तत्क्षणादेव लीयन्ते धी-ह्री-श्री-कान्ति-कीर्तयः
।।८०३।।

– 'दीजिये' इस शब्द के साथ याचना करने पर, देह में स्थित – बुद्धि, लज्जा, लक्ष्मी, कान्ति तथा कीर्ति – ये पाँच देवियाँ तत्काल व्यक्ति को छोड़कर चली जाती हैं।

धनहीनो न च हीनश्च धनिकः स सुनिश्चयः।
विद्यारत्नेन हीनो यः स हीनः सर्ववस्तुषु।।८०४।।

– धनहीन व्यक्ति को हीन नहीं, बल्कि निश्चित रूप से धनी ही समझना चाहिए, परन्तु जो व्यक्ति विद्यारत्न से रहित है, वह सचमुच सभी वस्तुओं से हीन होता है।

उठो, जागो और कितने दिन सोओगे? : विवेकानन्द

तुम लोग इसी समय कमर कसकर तैयार हो जाओ। ...

तुम लोगों का अब काम है प्रान्त-प्रान्त में, गाँव-गाँव में जाकर देश के लोगों को समझा देना कि अब आलस्य से बैठे रहने से काम न चलेगा। शिक्षा-विहीन, धर्म-विहीन वर्तमान अवनति की बात उन्हें समझाकर कहो – ''भाई, सब उठो, जागो और कितने दिन सोओगे?' और शास्त्र के महान् सत्यों को सरल करके उन्हें जाकर समझा दो।

सरल भाषा में उन्हें व्यापार, वाणिज्य, कृषि आदि गृहस्थ-जीवन के अत्यावश्यक विषयों का उपदेश दो। नहीं तो तुम्हारे लिखने-पढ़ने को धिक्कार ! (६/१२९)

भारत में धर्म बहुत दिनों से गतिहीन बना हुआ है। हम चाहते हैं कि उसमें गति उत्पन्न हो। मैं चाहता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य के जीवन में धर्म प्रतिष्ठित हो। मैं चाहता हूँ कि प्राचीन काल की तरह राजमहल से लेकर दरिद्र के झोपड़े तक सर्वत्र समान भाव से धर्म का प्रवेश हो। याद रहे, धर्म ही इस जाति का साधारण उत्तराधिकारी एवं जन्मसिद्ध स्वत्व है। इस धर्म को हर एक आदमी के दरवाजे तक निःस्वार्थ भाव से पहुँचाना होगा। ईश्वर के राज्य में जिस प्रकार वायु सब के लिये समान रूप से प्राप्त होती है, उसी प्रकार भारतवर्ष में धर्म को सुलभ बनाना होगा। भारत में इसी प्रकार का कार्य करना होगा। पर छोटे-छोटे दल बाँध आपसी मतभेदों पर विवाद करते रहने से नहीं बनेगा, हमें तो उन बातों का प्रचार करना होगा, जिनमें हम सब सहमत हैं और तब आपसी मतभेद आप ही आप दूर हो जायेंगे। मैंने भारतवासियों से बारम्बार कहा है और अब भी कह रहा हूँ कि कमरे में यदि सैकड़ों वर्षों से अन्धकार फैला हुआ है, तो क्या 'घोर अन्धकार !' 'भयंकर अन्धकार!!' कहकर चिल्लाने से अन्धकार दूर हो जायेगा? नहीं, रोशनी जला दो, फिर देखो कि अँधेरा आप ही आप दूर हो जाता है या नहीं। (५/२७४-७५)

पहले अन्य देशों में जाओ – अपनी आँखों से देखकर, दूसरों की आँखों के सहारे नहीं – अवस्था और रहन-सहन का अध्ययन करो।

फिर अपने शास्त्रों और पुराने साहित्य को पढ़ो और समस्त भारत की यात्रा करो तथा विभिन्न प्रदेशों में रहने वाले अधिवासियों के चाल-चलन, आचार-विचार का विस्तीर्ण दृष्टि और उन्नत मस्तिष्क से; बेवकूफों की तरह नहीं – विचार करो, तब समझ सकोगे कि जाति अभी भी जीवित है, धुकधुकी चल रही है, केवल बेहोश हो गयी है और देखोगे कि इस देश का प्राण धर्म है, भाषा धर्म है तथा भाव धर्म है। तुम्हारी राजनीति, समाजनीति, रास्ते की सफाई, प्लेगनिवारण, दुर्भिक्षपीड़ितों को अन्नदान आदि चिरकाल से इस देश में जैसे हुआ है, वैसे ही होगा – अर्थात् धर्म के द्वारा यदि होगा तो होगा, अन्यथा नहीं। तुम्हारे रोने-चिल्लाने का कुछ भी असर न होगा। (१०/६०-६१)

भारत का बाहर के देशों से सम्बन्ध जोड़े बिना हमारा काम नहीं चल सकता। किसी समय हम लोगों ने जो इसके विपरीत सोचा था, वह हमारी मूर्खता मात्र थी और उसी की सजा का फल है कि हजारों वर्षों से हम दासता के बन्धनों में बँध गये हैं। हम लोग दूसरी जातियों से अपनी तुलना करने के लिये विदेश नहीं गये और हमने संसार की गति पर ध्यान रखकर चलना नहीं सीखा। यही है भारतीय मन की अवनति का प्रधान कारण। हमें यथेष्ट सजा मिल चुकी, अब हमें ऐसा नहीं करना चाहिए। (५/१६६)

सम्पादकीय

हम भारत की शान हैं

स्वामी विवेकानन्द ने भारत के उत्थान हेतु भारतवासियों का आह्वान करते हुये कहा था कि भारतवासियों को अपनी चिरनिद्रा को त्याग कर उठना होगा और युवकों को गाँव-गाँव में जाकर लोगों को प्रेरित करना होगा। उन्हें उनकी शक्ति का स्मरण दिलाना होगा। उनमें अपार शक्ति है। वे चाहें तो, एक मुट्ठी सत्तू खाकर पूरे विश्व के परिवेश को बदल सकते हैं। उनमें त्रिलोककम्पनकारिणी शक्ति है। भारतवासियों को भविष्य में महान कार्य करने हैं, इसलिये सम्पूर्ण भारतवासी को महान बनना होगा। सबको महानता के सद्गुणों को अपने में समाहित करना होगा। इसके बाद भारत ही नहीं, विश्व को भी शान्ति-सद्भावना की नई दिशा देनी होगी, जिसकी नितान्त आवश्यकता है। तत्कालीन भारत की परतन्त्रता और दुर्दशा को देखकर निराश और हताश हुये लोगों में आशा और विश्वास का संचार करते हुये स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने शिष्य शरत्चन्द्र चक्रवर्ती से कहा था – ''यह (भारत) सनातन धर्म का देश है। यह देश गिर अवश्य गया है, परन्तु निश्चय ही फिर उठेगा और यह ऐसा उठेगा कि संसार देखकर दंग रह जायेगा। देखा नहीं है, नदी या समुद्र में लहरें जितनी नीचे उतरती हैं, उसके बाद उतनी ही जोर से ऊपर उठती हैं। यहाँ पर भी उसी प्रकार होगा। देखता नहीं है, पूर्वाकाश में अरुणोदय हुआ है, सूर्य उदित होने में अब अधिक विलम्ब नहीं है। तुमलोग इसी समय कमर कसकर तैयार हो जाओ। ... तुमलोगों का अब काम है प्रान्त-प्रान्त में, गाँव-गाँव में जाकर देश के लोगों को समझाना कि अब आलस्य से बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। शिक्षाविहीन, धर्मविहीन, वर्तमान अवनति की बात उन्हें समझाकर कहो – 'भाइयो ! उठो, जागो, और कितने दिन सोओगे?' शास्त्र के महान सत्यों को सरल करके उन्हें समझा दो। ... सरल भाषा में उन्हें व्यापार, वाणिज्य, कृषि आदि गृहस्थ-जीवन के अत्यावश्यक विषयों का उपदेश दो। नहीं तो तुम्हारे लिखने-पढ़ने को धिक्कार – तुम्हारे वेद-वेदान्त पढ़ने को भी धिक्कार !''[१]

भारतवासियों को जाग्रत और प्रेरित करने के लिये स्वामीजी उनकी क्षमता और कार्यकुशलता की प्रशंसा और जाम्बवन्तजी जैसा हनुमत्शक्ति का स्मरण दिलाते हैं। इसके एक प्रसंग का उल्लेख करना यहाँ समीचीन होगा। १८९८ में 'प्रबुद्ध भारत' के प्रतिनिधि ने स्वामीजी से पूछा, ''तब आप वास्तव में जो चाहते हैं, वह है राष्ट्रीय क्षमता?''

स्वामीजी ने कहा – ''निश्चय ही। क्या आप कोई ऐसी बात बता सकते हैं, जिसके कारण भारत आर्य राष्ट्रों में निचले स्थान पर पड़ा रहे? क्या वह बुद्धि में मन्द है? क्या वह कौशल में कम है? आप उसकी कला को देखिये, उसके गणित को देखिये, उसके दर्शन को देखिये और फिर कहिये, क्या आप मेरे प्रश्नों के उत्तर में 'हाँ' कह सकते हैं? केवल इस बात की आवश्यकता है कि वह सम्मोह को दूर करे, युगों की निद्रा से जाग जाये और राष्ट्रों की पंक्ति में अपना वास्तविक स्थान ग्रहण करे।''[२]

स्वामीजी की इस अमोघ वाणी, उनके अचल वरदान ने आधुनिक भारत के सौभाग्य के द्वार का उन्मोचन किया है। ऋषि, युगाचार्य स्वामीजी की भविष्यवाणी यथार्थ में, साकार रूप में परिणत हो रही है। आज भारतवासी विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्टता को प्राप्त कर रहे हैं, भारत के विकास में सब प्रकार से अपना योगदान कर रहे हैं और एक सुखी, समृद्ध, सम्पन्न, गौरवशाली अभिनव भारत का निर्माण कर रहे हैं।

स्वामीजी ने कहा था – ''अतीत के इतिहास ने भारत के आन्तरिक जीवन का और पश्चिम की सक्रियता (अर्थात् बाह्य जीवन का) विकास किया है। अभी तक ये एक-दूसरे से दूर रहे हैं। अब समय आ गया है कि वे परस्पर मिलें। ... आप

अपने जीवन को महासागर के समान गहरा बनाइये, पर उसे आकाश के समान विस्तृत भी होने दीजिये।''[३]

स्वामीजी की इस अभीप्सा को भारतीय युवक केवल स्वदेश में ही नहीं, विदेशों में भी अपनी दक्षता और सद्व्यवहार के बल पर पूर्ण करने हेतु प्रयत्नशील हैं। ये भारत का मूल मन्त्र 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को चरित्रार्थ करते हुये सम्पूर्ण विश्व में भारत की उत्तुंग ध्वजा को लहरा रहे हैं। इसलिये भारतीय युवाओं की विश्व में सर्वाधिक साख और माँग है। प्रतिष्ठित लेखक प्रह्लाद सबनानी जी की एक रिपोर्ट के अनुसार भारतवासियों की वैश्विक साख इस प्रकार है – ''वैश्वीकरण के इस युग में पूरा विश्व ही एक गाँव के रूप में विकसित हो रहा है। समस्त देश एक तरह से आपस में जुड़-से गये हैं। इन विकसित देशों में रह रहे वहाँ के मूल नागरिकों का भारतीय मूल के नागरिकों पर विश्वास भी बढ़ता जा रहा है, क्योंकि भारतीय मूल के नागरिकों का चाल-चलन, जो भारत की महान सनातन संस्कृति का अनुसरण करता हुआ दिखाई देता है, को देखकर भी इन देशों के मूल नागरिक भारतीय मूल के नागरिकों से बहुत प्रभावित हो रहे हैं एवं आसानी से भारतीय मूल के नागरिकों को इन देशों में उच्च पदों पर आसीन कर रहे हैं। एक तो उच्च शिक्षा प्राप्त, दूसरे उच्च कौशल प्राप्त, तीसरे भारतीय सनातन संस्कृति का अनुसरण; इन तीनों विशेषताओं के साथ भारतीय मूल के नागरिक विकसित देशों में अपना विशेष स्थान बनाने में लगातार सफल हो रहे हैं।

आज लगभग समस्त विकसित देश भारतीय मूल के नागरिकों को अपने देशों की नागरिकता प्रदान करने के लिये लालायित दीख रहे हैं। यह सब इसलिये सम्भव हो रहा है, क्योंकि जो ३.२० करोड़ से अधिक भारतीय मूल के नागरिक आज विश्व के कई देशों में रह रहे हैं। उन्होंने अपनी उच्च शिक्षा, कौशल, ईमानदारी और परिश्रम के बल पर एवं महान भारतीय संस्कृति का पालन करते हुये इन देशों में अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज की है तथा इन देशों की अर्थव्यवस्था को गतिशील बनाने में अपना भरपूर योगदान दिया है। विशेष रूप से आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, कनाडा, अमेरिका, सिंगापुर, जापान सहित अन्य कई देश आज इस प्रकार की कई नीतियाँ बनाने में जुटे हैं कि किस प्रकार इन देशों में रह रहे भारतीय नागरिकों को वहाँ के राजनैतिक क्षेत्र में भी भागीदार बनाया जाये, ताकि इन देशों की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक व्यवस्था में सुधार किया जा सके। इन समस्त देशों के मूल नागरिकों में आज महान भारतीय संस्कृति की ओर बढ़ता रुझान भी स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा है। ये समस्त देश आज भारतीय मूल के नागरिकों को राष्ट्रीय आर्थिक सम्पत्ति मानने लगे हैं, जो इन देशों के आर्थिक विकास में अपना योगदान दे रहे हैं। भारतीय मूल के अधिकाधिक नागरिकों को अपने देश में आकर्षित करने के लिये इन देशों के बीच एक होड़-सी लगी है।''[४]

इस प्रकार हम देखते हैं कि किस प्रकार भारतवासी देश-विदेश सर्वत्र अपने सद्गुणों, अपनी शिक्षा, कला, संस्कृति और कौशल से भारत की गरिमा का वर्धन कर रहे हैं। भारत की शान्तिप्रिय सनातन संस्कृति की ओर विश्व आकर्षित हो रहा है। भारतीय संस्कृति और भारत की आध्यात्मिक सम्पदा से विदेशियों को भी अवगत कराकर उनके जीवन में सच्चा सुख और स्थायी शान्ति देने का प्रयत्न भी भारतीय धर्माचार्य कर रहे हैं।

इन सबमें कहीं-न-कहीं स्वामी विवेकानन्द जी की वह कल्पना साकार होती प्रतीत हो रही है। भारतवासी अब जग रहे हैं। भारत उठ रहा है, केवल भौतिकता की दृष्टि से नहीं, केवल आध्यात्मिकता की दृष्टि से नहीं, बल्कि दोनों के साथ पुन: उठ रहा है। यद्यपि आध्यात्किता का ह्रास प्रतीत हो रहा है, लेकिन यह पुन: अपने अतीत से भी अधिक गौरव को प्राप्त होगा, ऐसी स्वामीजी की भविष्यवाणी है। अत: हमें पूर्ण विश्वास है कि भारत अपने देशवासियों के सुकृत्यों से ही अपने प्राचीन काल से भी अधिक शक्तिशाली और गौरवशाली होकर विश्व-पटल पर उभरेगा। आवश्यकता है इस कालप्रवाह में, इस महान सौभाग्य के पल में अपने को संयुक्त कर अपने जीवन को धन्य बनाने की। भारत गौरव की यह यात्रा प्रारम्भ हो चुकी है, अब यह निरन्तर अबाध गति से बढ़ती रहेगी। किसी कवि ने कहा है –

अमर हमारी धरती माता अमर हमारे गान हैं।
हम न रुकेंगे हम न झुकेंगे हम भारत की शान हैं।।[५]

ooo

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. विवेकानन्द साहित्य, ६/१२८-२९ **२.** वही, ४/२६४ **३.** वही, ४/२६४ **४.** 'हिन्दू विश्व', अप्रैल १६-३०, (२०२३), पृ.१९ **५.** स्तव भजनांजलि, पृ. ३२४

रक्षाबन्धन विशेष

रक्षाबन्धन

स्वामी तन्निष्ठानन्द, नागपुर

रक्षाबन्धन एक हिन्दू त्यौहार है, जो प्रतिवर्ष श्रावण मास की पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है। यह भाई-बहन के पवित्र स्नेह-सम्बन्ध और प्राण-पण से बहन की रक्षा हेतु भाई के दृढ़ संकल्प और कटिबद्धता का द्योतक है। राखी सामान्यत: बहनें भाई को ही बाँधती हैं, परन्तु ब्राह्मणों, गुरुओं और परिवार में छोटी लड़कियों द्वारा सम्मानित सम्बन्धियों को भी बाँधी जाती है। कभी-कभी सार्वजनिक रूप से किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति को भी राखी बाँधी जाती है। रक्षाबंधन के अवसर पर बहन अपना सम्पूर्ण प्रेम अपने भाई की कलाई पर राखी बाँधकर उड़ेल देती है। भाई इस अवसर पर कुछ उपहार देकर भविष्य में संकट के समय सहायता देने का वचन देता है और बहन भगवान से अपने भाइयों की प्रगति के लिए प्रार्थना करती है। सबसे पहले भगवान को राखी बाँधी जाती है। प्रकृति के संरक्षण हेतु आजकल वृक्षों को भी

राखी बाँधने की परम्परा प्रारम्भ हो गयी है। इस दिन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पुरुष सदस्य परस्पर भाईचारे के लिये एक दूसरे को भगवा रंग की राखी बाँधते हैं। हिन्दू धर्म के सभी धार्मिक अनुष्ठानों में रक्षासूत्र बाँधते समय एक श्लोक का उच्चारण करते हैं, जिसमें रक्षाबन्धन का सम्बन्ध राजा बलि से स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। भविष्यपुराण के अनुसार इन्द्राणी द्वारा निर्मित रक्षासूत्र को देवगुरु बृहस्पति ने इन्द्र के हाथों बाँधते हुए यह स्वस्तिवाचन किया था –

येन बद्धो बलिराजा दानवेन्द्रो महाबलः।
तेन त्वामपि बध्नामि रक्षे मा चल मा चलः।।

अर्थात् जिस रक्षासूत्र से महान शक्तिशाली दानवेन्द्र राजा बलि को बाँधा गया था, उसी सूत्र से मैं तुझे बाँधता हूँ। हे रक्षे (राखी)! तुम अडिग रहना, अपने संकल्प से कभी भी विचलित न होना।

रक्षाबंधन का धार्मिक महत्त्व

महाभारत में श्रीकृष्ण और द्रौपदी को भाई-बहन माना जाता है। शिशुपाल का वध करते समय भगवान श्रीकृष्ण की तर्जनी उंगली कट गयी थी। तब द्रौपदी ने अपनी साड़ी फाड़कर उनकी उंगली पर पट्टी बाँधी थी। उस दिन श्रावण पूर्णिमा का दिन था। तभी से रक्षाबंधन श्रावण पूर्णिमा को मनाया जाता है। श्रीकृष्ण ने एक भाई का कर्तव्य निभाते हुए चीर-हरण के समय बहन द्रौपदी की रक्षा की थी।

पौराणिक प्रसंग

देव और दानवों में जब युद्ध आरम्भ हुआ, तब दानव देवों पर भारी पड़ने लगे। भगवान **इन्द्र** घबरा कर बृहस्पति के पास गये। वहाँ बैठी इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी सब सुन रही थीं। उन्होंने रेशम का धागा मन्त्रों की शक्ति से पवित्र करके अपने पति के हाथ पर बाँध दिया। संयोग से वह श्रावण पूर्णिमा का दिन था। लोगों का विश्वास है कि इन्द्र इस लड़ाई में इसी धागे की मन्त्र-शक्ति से विजयी हुए थे। उसी दिन से श्रावण-पूर्णिमा के दिन यह धागा बाँधने की प्रथा चली आ रही है। यह धागा धन, शक्ति, हर्ष और विजय देने में पूरी तरह समर्थ माना जाता है।

दानवेन्द्र **राजा बलि** ने जब १०० यज्ञ पूर्ण कर स्वर्ग का राज्य छीनने का प्रयत्न किया, तो इन्द्र आदि देवताओं ने भगवान विष्णु से प्रार्थना की। तब भगवान वामन अवतार लेकर ब्राह्मण का वेष धारण कर राजा बलि से भिक्षा माँगने पहुँचे। गुरु के मना करने पर भी बलि ने तीन पग भूमि दान कर दी। भगवान ने तीन पग में सारा आकाश, पाताल और

धरती नापकर राजा बलि को रसातल में भेज दिया। इस प्रकार भगवान विष्णु ने बलि राजा के अभिमान को चकनाचूर कर दिया। कहते हैं राजा बलि ने रसातल में रहते हुए अपनी भक्ति के बल से भगवान को रात-दिन अपने सामने रहने का वचन ले लिया। भगवान के घर न लौटने से परेशान लक्ष्मीजी को नारदजी ने एक उपाय बताया। उस उपाय का पालन करते हुए लक्ष्मीजी ने राजा बलि के पास जाकर उसे राखी बाँधकर अपना भाई बनाया और अपने पति भगवान को अपने साथ ले आयीं। उस दिन श्रावण मास की पूर्णिमा तिथि थी। इसलिए यह त्यौहार **बलेव** नाम से भी प्रसिद्ध है।

ऐतिहासिक प्रसंग

मेवाड़ की **रानी कर्मावती** को बहादुरशाह द्वारा मेवाड़ पर हमला करने की पूर्व सूचना मिली। रानी लड़ने में असमर्थ थीं, अत: उसने मुगल बादशाह **हुमायूँ** को राखी भेज कर रक्षा की याचना की। हुमायूँ ने मुसलमान होते हुए भी राखी की लाज रखी और मेवाड़ पहुँच कर बहादुरशाह के विरुद्ध मेवाड़ की ओर से लड़ते हुए कर्मावती व उसके राज्य की रक्षा की। एक अन्य प्रसंगानुसार **सिकन्दर** की पत्नी ने अपने पति के हिन्दू शत्रु **पुरूवास** को राखी बाँधकर अपना मुँहबोला भाई बनाया और युद्ध के समय सिकन्दर को न मारने का वचन लिया। पुरूवास ने युद्ध के दौरान हाथ में बँधी राखी और अपनी बहन को दिये हुए वचन का सम्मान करते हुए सिकन्दर को जीवन-दान दिया।

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में रक्षा बन्धन पर्व की भूमिका

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में जन-जागरण के लिये भी इस पर्व का सहारा लिया गया था।

श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने बंग-भंग का विरोध करते समय रक्षाबन्धन त्यौहार को बंगाल निवासियों के पारस्परिक भाईचारे तथा एकता का प्रतीक बनाकर इस त्यौहार का राजनीतिक उपयोग आरम्भ किया। सन् १९०५ में उनकी प्रसिद्ध कविता 'मातृभूमि वन्दना' का प्रकाशन हुआ, जिसमें वे लिखते हैं – 'हे प्रभु ! मेरे बंगदेश की धरती, नदियाँ, वायु, फूल, सब पावन हों। हे प्रभु ! मेरे बंगदेश के, प्रत्येक भाई-बहन के उर, अन्त:स्थल अविच्छिन्न, अविभक्त एवं एक हों।' सन् १९०५ में लॉर्ड कर्ज़न ने बंग-भंग करके वन्दे मातरम् के आन्दोलन से भड़की एक छोटी-सी चिंगारी को शोलों में बदल दिया। १६ अक्तूबर, १९०५ को बंग-भंग की नियत घोषणा के दिन रक्षाबन्धन की योजना साकार हुई और लोग बाग गंगा स्नान करके सड़कों पर यह कहते हुए उतर आये –

सप्त कोटि लोकेर करुण क्रन्दन,
सुनेना सुनिल कर्ज़न दुर्जन;
ताइ निते प्रतिशोध मनेर मतन करिल,
आमि स्वजने राखी बन्धन।

धार्मिक प्रसंग

इस त्यौहार को **उत्तरांचल** में श्रावणी कहते हैं। इस दिन उत्सर्जन, स्नान-विधि, ऋषि-तर्पणादि करके नवीन यज्ञोपवीत धारण किया जाता है। ब्राह्मणों का यह सर्वोपरि त्यौहार माना जाता है। ब्राह्मण अपने यजमानों को यज्ञोपवीत तथा राखी देकर दक्षिणा लेते हैं। **अमरनाथ** की अति विख्यात धार्मिक यात्रा गुरु पूर्णिमा से प्रारम्भ होकर रक्षाबन्धन के दिन सम्पूर्ण होती है। कहते हैं, इसी दिन यहाँ का हिमानी शिवलिंग भी अपने पूर्ण आकार को प्राप्त होता है। इस उपलक्ष्य में इस दिन अमरनाथ गुफा में प्रत्येक वर्ष मेले का आयोजन भी होता है। **महाराष्ट्र** में यह त्यौहार **नारळी पूर्णिमा** या **श्रावणी** के नाम से विख्यात है। इस दिन लोग नदी या समुद्र के तट पर जाकर अपने जनेऊ बदलते हैं और समुद्र की पूजा करते हैं। इस अवसर पर समुद्र के स्वामी वरुण देवता को प्रसन्न करने के लिये नारियल अर्पित करने की परम्परा भी है। यही कारण है कि इस एक दिन के लिये मुंबई के समुद्र-तट नारियल के फलों से भर जाते हैं। **राजस्थान** में रामराखी और चूड़ाराखी या लूंबा बाँधने की प्रथा है। रामराखी सामान्य राखी से भिन्न होती है। इसमें लाल डोरे पर एक पीले छींटों वाला फुँदना लगा होता है। यह केवल भगवान को ही बाँधी जाती है। चूड़ा राखी भाभियों की चूड़ियों में बाँधी जाती है।

वृन्दावन में : भगवान भाव के भूखे हैं और जैसा भक्त का भाव वैसा ही उसका भगवान से नाता जुड़ जाता है। भगवान श्रीकृष्ण को कोई मित्र-सखा के रूप में पूजता है,

तो किसी ने उन्हें अपना भाई बना लिया है। देश-विदेश में ऐसी बहुत-सी बहनें हैं, जिन्होंने बांके बिहारी को अपना भाई बना लिया है और हर रक्षाबंधन पर यदि वे स्वयं नहीं आतीं, तो कूरियर या डाक से अपनी राखी भेजना नहीं भूलतीं। राखी के साथ ही अपने आराध्य के लिए चिट्ठियाँ भी भेजती हैं। उन सबका भाव एक ही रहता है कि भगवान उनकी राखी का सम्मान रखकर जीवनभर अपनी कृपा उन पर बनाए रखें। रक्षाबंधन के दिन बहनों द्वारा भेजी गई राखियाँ ठाकुरजी को समर्पित की जाती हैं और उनकी भेजी गई चिट्ठी भी सेवकों द्वारा ठाकुरजी को पढ़कर सुनाई जाती हैं। बहनों की ओर से सेवकों द्वारा ठाकुरजी से प्रार्थना भी की जाती है और उनकी हर मनोकामना पूर्ण करने की ठाकुरजी से विनती की जाती है।

पुरी के जगन्नाथ मन्दिर में रक्षाबंधन

बहन सुभद्रा इस दिन अपने दो भाई बलभद्रजी और जगन्नाथजी को राखी बाँधती हैं। पाटरा बिसोई समूह के पुजारी चार राखियाँ बनाते हैं। जगन्नाथजी की राखी लाल-पीले रंग की होती है, तो बलभद्रजी की राखी नीले-जामुनी रंग की होती है। इसी दिन भगवान बलभद्रजी का जन्मदिन भी मनाते हैं। बलभद्रजी कास्तकारों के देव माने जाते हैं। इसलिए कास्तकार इस दिन अपने हल की पूजा करते हैं। बलभद्रजी का जन्म गौमाता से जुड़ा है। इसलिए गौमाता को नहलाकर उनकी पूजा की जाती है। उनके सींग को राखी बाँधते हैं और उनके गले में फूल की मालाएँ डालते हैं। उन्हें विभिन्न प्रकार के मीठे पीठे बनाकर खिलाते हैं। इसलिए इसे 'गम्हा-पूर्णिमा' भी कहते हैं। उँची जगह उपहार बाँधते हैं, जिसे बच्चे उँची छलांग लगाकर खींच लेते हैं। इस प्रतियोगिता को 'गम्हाडिया' कहते हैं। इस प्रकार रक्षा-बन्धन त्यौहार जन-मानस में अपनी उज्ज्वल गरिमा से अक्षुण्ण है। ○○○

कविता

भगवति ! भारत एक हृदय हो !

बैजनाथ प्रसाद शुक्ल

भगवति ! भारत एक हृदय हो !
पुण्य भूमि, शत कोटि जनों के उर-पुर प्रेम-विनय हो ।।
हे जगदीश्वरि! ग्राम नगर में, सबकी जय हो जय हो ।
न ही भेद हो कभी परस्पर, समता भाव उदय हो ।।
हो सहकार एकता होवे, भारत शक्ति निलय हो ।
बोलें समझे बात परस्पर, शुद्धि बन्युत्व अभय हो ।।
एक राष्ट्र भाषा हिन्दी सब, सीखें, शुभ अक्षय हो ।
यश सुख शान्ति विभव विश्वेश्वरि ! दे जग मंगलमय हो।।

कविता

प्यारा भारत देश हमारा

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

आत्मतत्त्व की महिमा गाता, प्यारा भारत देश हमारा ।
ऋषि-मुनियों के तप-जीवन ने, इसको सुन्दर सदा सँवारा।।
ज्ञानसूर्य है यहाँ चमकता, करता जग को नित उजियारा।
विश्वप्रेम की धारा बहती, सारा विश्व कुटुम्ब हमारा ।।
गिरि शृंगों में बर्फ चमकते, सुरभि समीरण बहता प्यारा।
कल-कल करती नदियाँ बहतीं, यह लगता है अनुपम न्यारा।।
यहाँ नहीं झगड़ा धर्मों का, नहीं आपसी बैर हमारा।
सकल विश्व में अमन-चैन हो, यही हमारा सुन्दर नारा।।
भारत अपनी देवभूमि है, यही स्वर्ग है नित्य हमारा ।
इसके चरणों की पूजा में, अर्पित है तन-मन-धन सारा।।
ऐसा देश कहाँ पर होगा, सुख देवे जो जग को सारा ।
हम भारत में जन्म लिये हैं, यह है अति सौभाग्य हमारा।।

भगवान ने हमें आवश्यक सब कुछ दिया है

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

अपने जीवन में उन्नति के लिए कुछ करना चाहिए। जीवन में दुर्योधन-वृत्ति अधिक है कि सभी चीजों का स्वामी मैं ही हूँ, सब पर मेरा ही अधिकार है। हमारे जीवन में अर्जुन की वृत्ति आयी, तो समर्पण की बुद्धि आयेगी। जैसे अर्जुन की कृष्ण के प्रति थी। भगवान उसी पर कृपा करते हैं, जो अपना सर्वस्व त्यागकर व्याकुल होकर प्रार्थना करते हैं, उनके शरणागत होते हैं। जीवन में शान्ति कोई नहीं दे सकता। हमारा मन ही हमें शान्ति देगा। ईश्वर की योजना से हमारी जैसी परिस्थिति है, वह हमारे कर्मों के कारण ही है। जीवन में हम शान्ति चाहते हैं, लेकिन हमारे कर्मों के कारण हमारा मन अशान्त रहता है। सुविधाओं से सुख मिलता है, लेकिन शान्ति नहीं मिलती।

यह चाहिये, वह चाहिए, ऐसी वृत्ति से मन में अशान्ति आती है। हमें विचार करना चाहिये और अपने मन से कहना चाहिए कि हमको कुछ नहीं चाहिए। भगवान ने आवश्यक सब कुछ दिया है, अब इससे अधिक क्या चाहिये। इस तरह मन को सन्तुष्ट कर व्यर्थ की लोभवृत्ति से बचना चाहिये। शान्ति पाने के लिए अपनी ओर, अपने भीतर देखना चाहिए, बाहर संसार की ओर नहीं। लेकिन लोग चाहते शान्ति हैं, लेकिन देखते रहते हैं संसार की ओर। ऐसा करने से शान्ति कभी नहीं मिल सकती। शान्ति ईश्वर को छोड़ दूसरा कोई नहीं दे सकता। हमारी आत्मा सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है। उसमें कभी अशान्ति नहीं आ सकती।

चाह गयी चिन्ता मिटी मनवा बेपरवाह।

जिसको कुछ नहीं चाहिए, वह शाहन का शाह।

सब कुछ अपने पास होने के बाद भी हमारी चाह नहीं मिटती। इसलिए हम सबको आत्मनिरीक्षण करना चाहिए।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं – **अशान्तस्य कुतः सुखम्**। शान्ति का एकमात्र उपाय है कि मुझे कुछ नहीं चाहिए। आलसी मत बनो। आराम का सम्बन्ध न व्यक्ति से, न वस्तु से है। दिन भर में १ घंटा एकदम अकेले रहें। संसार में कुछ कर्तव्य करते रहें, लेकिन थोड़ा समय आत्मनिरीक्षण के लिए अवश्य निकालें। जिन बातों के लिए दुख नहीं करना चाहिए, उन बातों के लिए हम दुख करते हैं, शोक करते हैं। हमें दुख होता है, जब हमारी प्रिय वस्तु हमसे अलग हो जाती है। इस वियोग की स्थिति में हमें प्रयास करना चाहिये कि हमें कैसे शान्ति मिले। सुख-दुख तो आने-जानेवाले हैं। ये सुख-दुख स्थायी नहीं रहते। शास्त्र कहते हैं, दुख को सहन करो –

सहनं सर्वदुःखानामप्रतिकारपूर्वकम्।
चिन्ताविलापरहितं सा तितिक्षा निगद्यते।।

चिन्ता-विलापरहित होकर सहन करने से चित्त विक्षुब्ध नहीं होता, शान्त रहता है। जीवन में शान्ति पाने के लिये ही लोग भावधारा से जुड़ते हैं। सब तरह से अशान्त, निराश हुआ आदमी जब रामकृष्ण-भावधारा से जुड़ता है, तो उसे ऐसा लगता है कि श्रीरामकृष्ण देव ने जो बताया है, यही तो सच्चा शान्ति का मार्ग है। निःस्वार्थ भाव से सेवा करने से जीवन में शान्ति मिलती है। परिवार में भी जो व्यक्ति स्वार्थी होता है, उसे कोई चाहता नहीं, उसे लोग अलग कर देते हैं, जिससे कलह होता है और कलह से अशान्ति होती है।

जब मन का अहंकार जायेगा, तभी तुम्हारा सत्यस्वरूप प्रगट होगा। आत्मा नित्य सत्य है। क्षुद्र अहं को छोड़ आत्मा का स्मरण करो। मैं मरा तो सारा जंजाल मिटा। संसार की सब वस्तुएँ हमें धोखा देनेवाली हैं। अहंकार और आध्यात्मिकता कभी साथ-साथ नहीं रह सकते। दूसरे के कष्ट को देखकर सुखी होने, दूसरे से ईर्ष्या करने से मन में अशान्ति होगी। सब कुछ भगवान ने दिया है, इसलिये सबको वितरण करो। मैं-मेरा से आध्यात्मिक उन्नति नहीं होती। मौत के एक झटके से सब कुछ यहीं छूट जायेगा। यदि आध्यात्मिकता में हम उच्च जीवन बीताना चाहते हैं, तो हमें सबके प्रति कल्याण भावना रखनी होगी। जब तक हमारे मन में सबके प्रति कल्याण की भावना रहेगी, तब तक किसी का अकल्याण नहीं होगा और मन में शान्ति रहेगी। ○○○

रामकृष्ण संघ : एक विहंगम दृष्टि

स्वामी पररूपानन्द, जयरामवाटी

(गतांक से आगे)

ठाकुर के अलौकिक प्रेम, उपदेश, संरक्षण एवं उनकी कृपाप्राप्त ये सभी संन्यासी-शिष्य पवित्र चरित्र के तथा प्रत्यक्षानुभूति-सम्पन्न थे। सबने अपने व्यक्तित्व के आधार पर श्रीरामकृष्ण रूपी आदर्श को आत्मसात् किया था और अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसे भारत तथा विश्व के कल्याण में कार्यान्वित किया था। २९ जनवरी, १८९४ ई. को हरिदास बिहारीदास देसाई को लिखे पत्र में स्वामीजी ने लिखा था – ''भारत में तीन लोग एक साथ मिलकर पाँच मिनट के लिए भी कोई काम नहीं कर सकते। हर एक मनुष्य अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रयास करता है और अन्त में पूरे संगठन की दुर्दशा हो जाती है। ऐसे राष्ट्र में, विशेषत: बंगाल में ऐसे व्यक्तियों के एक संगठन का निर्माण करना, जो परस्पर मतभेद रखते हुए भी अटल सूत्र में बँधे हों, क्या आश्चर्यजनक नहीं है? यह संघ क्रमश: बढ़ता रहेगा। शाश्वत शक्ति और समुन्नति से सम्बद्ध यह अद्भुत उदारता सारे भारतवर्ष में फैल जायेगी एवं घोर अज्ञान, द्वेष, जाति-भेद, पुराने अन्धविश्वास और ईर्ष्या के बावजूद, जो दासों के इस राष्ट्र की पैतृक सम्पत्ति है, यह उदार भाव इस राष्ट्र में संजीवनी शक्ति का संचार करेगा और रोम-रोम में समा जायेगा।''

इस समय की उल्लेखनीय घटनायें इस प्रकार हैं – मठ आनेवाले अतिथियों में साधु नाग महाशय का स्थान अति उच्च है। उनकी उपस्थिति से मठ में आनन्द की लहर बह जाती थी। भावावेश में नाग महाशय जी इधर-उधर गिर पड़ते थे। मठ के साधु सम्भालकर उन्हें उठाते थे। स्वामी रामकृष्णानन्द के मन में आनन्द की मानो सीमा ही न होती थी, आमने-सामने बैठकर 'जय गुरु' बोलते हुए दोनों अश्रुसिक्त नयन और अवरुद्ध कण्ठ होकर उच्च भावावेश में अवस्थान करते। स्वामी विवेकानन्द की अमेरिका में असाधारण सफलता के पश्चात् देश-विदेश से भी उनके प्रति श्रद्धालु अतिथियों में जूनागढ़ के दीवान हरिदास बिहारी देसाई और शिकागो नगर के डॉ. कलस्टन टर्नबुल आलमबाजार मठ के अतिथि हुए थे। देसाई जी १८९३ ई. के अन्तिम भाग में कलकत्ता आकर स्वामीजी की माता एवं भाइयों से मिले तथा आलमबाजार मठ के संन्यासियों से साक्षात्कार किया था और लौटने से पहले एक साधु-भण्डारा भी दिया था। पण्डित पंचानन तर्करत्न, बहुवल्लभ शास्त्री एवं सिन्धुप्रदेश से 'सोफिया' पत्रिका सम्पादक भी मठ आये थे। डॉ. कलस्टन टर्नबुल स्वामीजी के स्वदेश लौटने के कुछ सप्ताह पहले से कलकत्ता आये थे एवं मठ अक्सर आया करते थे। उनसे मठ-वासियों को स्वामीजी के बारे में जानकारी मिलती रहती थी। प्रतिदिन वे प्रात:काल दस बजे मठ आकर सन्ध्या आरती देखकर ही अपने आवास पर लौटते थे। धीरे-धीरे टर्नबुल

महाशय सबके प्रिय हो गये थे। वे कुछ महीनों पश्चात् अमेरिका लौट गये थे। स्वामीजी के संग अथवा उन्हीं दिनों विदेशी अतिथियों में कैप्टेन जेम्स हेनरी सेवियर और उनकी पत्नी श्रीमती शार्लटि एलिजाबेथ सेवियर, कुमारी हेनरियेटा मूलर, श्री जे.जे. गुडविन, सिंहल के बौद्ध आचार्य हैरिसन मठ आये थे। इसके अतिरिक्त मद्रास से आलासिंगा पेरुमल, जी.जी. नरसिंहाचार्य और कीडी (सिंगारभेलु मुदलियर) के नाम उल्लेखनीय हैं। स्वामीजी के प्रति सेवापरायणता तथा मठ के सदस्यों के साथ प्रेमपूर्ण आत्मीय व्यवहार से गुडविन सभी के प्रियपात्र हो गये थे। शिकागो धर्म-महासभा के प्रतिनिधि अनागारिक धर्मपाल ने लगभग १८९४ ई. के मध्य में कलकत्ता आने पर आलमबाजार मठ में आतिथ्य ग्रहण किया था। स्वामीजी से मिलने खेतड़ी के राजा अजीत सिंह भी मठ आये थे। ठाकुर के देश-विदेश के भक्तगणों में अनेकों ने यहाँ पदार्पण किया था। इस तरह अनेक पुरानी स्मृतियों को समेटे यह भवन अब भी देखा जा सकता है।

आलमबाजार में मठ के स्थानान्तरण के पश्चात् रसोईया न होने के कारण रामकृष्णानन्दजी ठाकुर का भोग पकाते थे। स्वामी योगानन्द, तुरीयानन्द और कुछ नवीन ब्रह्मचारी व संन्यासी सामान खरीदना, सब्जी काटना, कमरों की सफाई करना आदि कार्य करते थे। ऐसा भी समय गया, जब धन का अत्यन्त अभाव होने के कारण ठाकुर के भोग के लिए मिश्री की शरबत देना भी सम्भव नहीं होता था। ठाकुर के भोग हेतु इन दिनों (महेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय कलकत्ता के निवासी) स्वर्गीय महेन्द्रबाबू की पत्नी घर के नौकर द्वारा मिठाई और मिश्री भिजवा देती थीं। स्वामी रामकृष्णानन्द ने मठ में अत्यन्त अभाव के समय इस परिवार के द्वारा दी गई सहायता की प्रशंसा की थी, जिसके कारण ठाकुर-सेवा अबाध गति से चलाना सम्भव हो सका था। महेन्द्रनाथ की स्मृतिकथा के अनुसार – 'स्वामीजी के शिष्य खेतड़ी के राजा अजीत सिंह ने सौ रुपये प्रति माह भेजने का प्रस्ताव स्वामीजी को बताया था, परन्तु स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने वैराग्यवश नहीं लेना चाहा। यद्यपि स्वामीजी इससे थोड़े असन्तुष्ट हुए थे, परन्तु मन ही मन गुरुभाइयों के वैराग्य की प्रशंसा भी की होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। क्रमश: मठ में भक्तों की संख्या में वृद्धि हुई थी एवं इससे दैनन्दिन आवश्यकताओं की पूर्ति भी कुछ उन्नत हुई थी। १८९५ में स्वामी सुबोधानन्द इटावा जिले में कार्यरत गुरुभाई हरिप्रसन्न से मिले थे और मठ की आर्थिक अवस्था की चर्चा की थी। यह सुनकर हरिप्रसन्न प्रति माह साठ रुपये मठ भेजते रहते थे, जिससे मठ का आर्थिक कष्ट कुछ कम हुआ था। स्वामीजी के विदेश से प्रत्यावर्तन के पश्चात् भक्तों की संख्या में वृद्धि होने के कारण भी मठ की आर्थिक उन्नति हुई थी। परन्तु स्वामीजी के अलमोड़ा, कश्मीर, रावलपिंडी, लाहौर आदि की यात्रा के समय से पुन: मठ में अर्थाभाव होने लगा था। स्वामीजी जहाँ भी जाते, अर्थसंग्रह का प्रयास करते रहते थे। लाहौर से वे देहरादून, सहारनपुर, दिल्ली, अलवर, जयपुर तथा खेतड़ी गये थे। खेतड़ी छोड़ते समय राजा अजीत सिंह ने उन्हें तीन हजार रुपये उपहार दिए थे, यह राशि उन्होंने स्वामी सदानन्द एवं सच्चिदानन्द के साथ मठ भिजवा दिया था। उन दिनों राहत-कार्यों के लिए आगत धनराशि के व्यय एवं स्थाई निधि की व्यवस्था करने के लिए भी स्वामीजी पत्र लिखकर निर्देश देते रहते थे।

श्रीरामकृष्ण की नित्यपूजा में स्वामी रामकृष्णानन्द की भूमिका वराहनगर से आरम्भ होकर यहाँ भी प्रधान ही रही, जब तक वे ग्यारह वर्ष पूर्णनिष्ठा से ठाकुर की सेवा-पूजा करके मद्रास में स्थाई मठ की स्थापना के लिये नहीं चले गये। इस विषय में वे कठोर परिश्रमी थे, विशेषत: वे ठाकुर को जीवन्त मानकर सेवा करते थे। मंदिर के प्राय: सभी कार्य वे स्वयं करते थे। उनकी इस असाधारण ठाकुर की सेवा-पूजा ने आदर्श परम्परा का शुभारम्भ किया था। आलमबाजार मठ में निरंजनानन्दजी की उत्साहपूर्वक चेष्टा से ठाकुर के सिंहासन, शयन का खाट, बिस्तर और गंग (काँसे का थालीनुमा वाद्ययन्त्र जिसे आरती के समय बजाया जाता है) आदि की व्यवस्था हो गई थी। स्वामी शिवानन्द सन्ध्या-आरती के समय बजाने के लिये काशी से डमरू लाये थे। उन दिनों पुजारी एवं सेवकों की श्रद्धा-भक्ति से पूजास्थल का आध्यात्मिक वातावरण सहज ही बोधगम्य हो जाता था। स्वामीजी के शिष्य शरत्चन्द्र चक्रवर्ती के संस्मरण से ज्ञात होता है कि ठाकुर की पूजा में रामकृष्णानन्दजी की लगन आरम्भ में अस्वाभाविक प्रतीत होने पर भी क्रमश: समझ में आता था कि निष्ठापूर्वक सेवा-पूजा की पराकाष्ठा का यही उत्तम उदाहरण है। 'जय गुरुदेव' की ध्वनि से जब मठ गूँज उठता था, तब प्रत्यक्षदर्शी को अनुभव होता था कि ये युवा संन्यासी देवता हैं और इनके साधुसंग से मन ईश्वराभिमुखी हो जाता है। आलमबाजार मठ के आरम्भिक एवं शेष दिनों में ब्रह्मचारी कालीकृष्ण (स्वामी विरजानन्द) पूजा के लिए आवश्यक प्रत्येक कार्य करते – कभी दक्षिणेश्वर से फूल

लाकर माला बनाकर ठाकुर को पहनाते, मठ की सफाई करते, तालाब से जल लाकर रखते, ठाकुर के लिये भोग पकाते इत्यादि। स्वामी रामकृष्णानन्द अथक परिश्रम करते थे और वह भी फूर्ति के साथ। उन्हें पूजा के लिए प्रत्येक वस्तुओं की परिमार्जित ढंग से ठीक समय पर व्यवस्था करना ही स्वीकार था, थोड़ी भी त्रुटि होने पर डाँट सुननी पड़ती थी, किन्तु पूजा के पश्चात् स्नेहपूर्वक प्रसाद खिलाते थे। इस विषय पर स्वामीजी ने गुरुभाइयों को लिखा था कि कहीं ठाकुर की नित्यपूजा को इतना अधिक महत्त्व न दिया जाये कि उनके आविर्भाव के मूल उद्देश्य को विश्व के सम्मुख रखना ही हम भूल जायें अथवा वह गौण हो जाये। स्मरण रखना चाहिये कि स्वामी रामकृष्णानन्द के परवर्ती जीवनकाल का दक्षिण भारत का अध्याय श्रीरामकृष्ण के आदर्श को प्रत्येक दृष्टि से भिन्न वातावरण में प्रसारित करने में विलक्षण रहा। वे जिस कार्य को करते थे, उसी में उनका चित्त पूर्णत: समाहित हो जाता था। १८९७ ई. में रामकृष्णानन्दजी के मद्रास जाने के पश्चात् ठाकुर की नित्यपूजा का दायित्व स्वामी प्रेमानन्द ने ग्रहण किया। प्रेमानन्दजी के द्वारा की गई पूजा में भक्तिभाव की गहराई की प्रशंसा स्वामी ब्रह्मानन्द एवं स्वामी तुरीयानन्द के पत्रों से ज्ञात होता है। ठाकुर पूजा करते समय प्रेमानन्दजी के आचरण के बारे में तुरीयानन्दजी ने लिखा था कि इसे ही 'ईश्वर के स्मरण-मनन में मग्न' हो जाना कहते हैं। स्वामी रामकृष्णानन्द की अनुपस्थिति में इस वर्ष विधिवत् श्रीकालिका पूजा करना सम्भव न हुआ, ठाकुर की विशेष पूजा व हवन स्वामी प्रेमानन्द ने किया था। पिछले वर्षों की भाँति इस वर्ष भी श्रीदुर्गा पूजा देवी का चित्र रखकर किया गया था, स्वामी प्रकाशानन्द पुजारी और स्वामी शुद्धानन्द तन्त्रधारक थे। स्वामी तुरीयानन्द ने नौ दिन श्रीदुर्गासप्तशती का पाठ किया था। महाष्टमी के दिन लगभग पचास भक्तों ने भजन-कीर्तन में योगदान किया एवं प्रसाद ग्रहण किया था। आलमबाजार मठ में प्रथम बार श्रीमाँ की जन्मतिथि (२ पौष १३०४ बंगाब्द, १६ दिसम्बर, १८९७ ई.) के अवसर पर विशेष पूजा का अनुष्ठान हुआ था। यहाँ स्वामीजी ने भी ठाकुर पूजा की थी, इस विषय पर स्वामी बोधानन्द लिखते हैं – ''स्वामी प्रेमानन्द के विशेष अनुरोध पर स्वामीजी पूजा के आसन पर बैठे। बैठते ही ध्यानस्थ हो गये। बहुत समय तक ध्यान करने के पश्चात् पुष्प, बिल्वपत्रों पर चन्दन लगाकर अंजलि भर पुष्प-बिल्वपत्रों को ठाकुर की वेदी, पादुका और पवित्र अस्थिभस्म के पात्र पर अर्पित किया। तत्पश्चात् ठाकुर के चित्र को सजाया एवं अन्त में शेष पुष्प गुरुभ्राता और अपने शिष्यों के मस्तक पर दे दिया। स्वामीजी ने अपने आचरण से यह स्पष्ट कर दिया था कि ठाकुर के प्रत्येक भक्त को स्मरण रखना चाहिये कि ध्यान, भजन आदि त्यागकर केवल मात्र मूर्तिपूजा, भोग आदि निवेदन करने में व्यस्त रहने से वह ठाकुर की शिक्षा प्रणाली की अवज्ञा कर रहा है।''

श्रीरामकृष्ण जन्मतिथि के अवसर पर स्वामी रामकृष्णानन्द अष्टप्रहर पूजा करते थे। इसके परवर्ती रविवार को दक्षिणेश्वर परिसर में 'सार्वजनिक महोत्सव' मनाया जाता था। इसका आरम्भ १८८१ ई. में ठाकुर के गृहस्थ शिष्य सुरेशचन्द्र मित्र, रामचन्द्र दत्त आदि की प्रचेष्टा से हुआ था। ठाकुर की उपस्थिति से इस उत्सव का आध्यात्मिक दृष्टि से महत्त्व निश्चय ही अमूल्य होता था। १८९२ ई. में आलम बाजार मठ स्थानान्तरित होने के पश्चात् ठाकुर की जन्म तिथि के अवसर पर यह महोत्सव दक्षिणेश्वर में धूमधाम से मनाया गया था। स्वामी शिवानन्द जी के पत्र से ज्ञात होता है कि लगभग १५०० भक्त उपस्थित हुए थे। पाँच-छह सम्प्रदाय के लोगों ने कीर्तन किया था। ठाकुर के निवास स्थान और तपस्या के स्थल पर लोगों ने कीर्तन एवं साष्टांग प्रणाम आदि किया था। पाश्चात्य से प्रभावित कलकत्ता नगर के लोगों का इस प्रकार भक्तिभावपूर्ण आचरण ईश्वर की कृपा से ही सम्भव हुआ था। २६ फरवरी, १८९३ ई. को ठाकुर की जन्मतिथि के अवसर पर ५/७ सहस्र भक्तों का समागम हुआ था। दक्षिणेश्वर परिसर में ठाकुर के प्रथम निवास-स्थान 'कुठिबाड़ी' के बरामदे में भक्तों ने प्रसाद ग्रहण किया था। अन्तरंग भक्तगण बरामदे में बैठकर आपस में ठाकुर के बारे में चर्चा कर रहे थे और कुछ भक्त पंचवटी में जप-ध्यान कर रहे थे। सबेरे भक्तों को दो पूड़ी व हलुआ और दोपहर में खिचड़ी प्रसाद वितरित किया गया था। स्वामीजी के अमेरिका में विपुल सफलता का प्रभाव अगले वर्ष स्पष्ट हुआ। ९ मार्च, १८९४ ई. को जन्मतिथि महोत्सव के अवसर पर और भी अधिक लोगों का योगदान रहा। उत्सव-स्थल पर लाटू महाराज और विजयकृष्ण गोस्वामी ने भावोन्मत्त होकर नृत्य किया था। ठाकुर के गृहस्थ भक्त श्रीरामचन्द्र दत्त और अन्य भक्तों ने बहुतायत में सभी प्रकार का आयोजन किया था। स्वामी रामकृष्णानन्द ने आनन्दित होकर नृत्य एवं भक्तों को प्रेमालिंगन किया था। १८९५ ई. की २६ फरवरी को जन्मतिथि तथा ३ मार्च को सार्वजनिक महोत्सव मनाया गया

था। तिथि पूजा के अवसर पर पुराने गृहस्थ-भक्त रामचन्द्र दत्त, मनमोहन मित्र, मास्टर महाशय आदि उपस्थित थे। दक्षिणेश्वर में महोत्सव के दिन श्री अक्षय कुमार सेन ने 'श्रीरामकृष्ण-पूँथि' पाठ करके श्रोताओं को मुग्ध कर दिया था। स्वामीजी को भेजे गये पत्र में लिखे विवरण को पढ़कर वे पूर्णत: सन्तुष्ट नहीं हुए और उन्होंने स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखा कि दो विषयों पर ध्यान देना है – अगले वर्ष एक लाख लोगों का समावेश हो और उन लोगों को श्रीरामकृष्ण भावादर्श को सहज बोधगम्य एवं सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया जाये। ठाकुर के जन्मोत्सव के बारे में स्वामीजी की सोच बहुत ऊँचे स्तर की तथा सुदूर प्रसारी भी थी। स्वामी त्रिगुणातीतानन्द का उत्साहवर्धन करते हुए स्वामीजी ने उन्हें भी लिखा कि जन्मोत्सव ऐसा मनाया जाये, जिससे समग्र विश्व में उसकी गूँज सुनाई दे। १८९६ ई. में १५ फरवरी जन्मतिथि तथा रविवार २३ फरवरी को सार्वजनिक महोत्सव मनाया गया था। स्वामीजी ने गुरुभाईयों को पत्र लिखकर आवश्यक निर्देश दिये – इस बार महोत्सव बड़े धूमधाम से मनाया जाये, प्रसाद साधारण हो, परन्तु ठाकुर की जीवनी का पाठ, वेद-वेदान्त आदि पर अधिक बल दिया जाना चाहिए एवं उत्सव के लिए निमन्त्रण का प्रारूप लिखकर भेजा। साथ ही यह भी लिखा कि यदि रुपये बच जायें, तो उसे जमा रखा जाये, जिससे मठ के दैनन्दिन खर्च में काम आ सके। स्वामी तुरीयानन्द के अनुसार कम-से-कम तीस सहस्र नरनारी के समागम ने भक्तिपूर्ण हर्षोल्लास के साथ संकीर्तन एवं जयघोष किया था। कीर्तन करनेवालों में वैष्णवचरण का प्रधान आकर्षण था। आन्दुल के संकीर्तन दल द्वारा मन्दिर में किया गया कीर्तन भी बहुत मनमोहक हुआ था। इस महोत्सव के विषय में स्वामीजी के स्विटजरलैंड से २३ अगस्त, १८९६ ई. को रामकृष्णानन्दजी को लिखे गये पत्र में निर्देश सभी के लिए ध्यान देने योग्य है –

१. यदि वेश्याओं को दक्षिणेश्वर जैसे महान तीर्थ में जाने की अनुमति नहीं है, तब वे कहाँ जायें। ईश्वर विशेषकर पापियों के लिये प्रकट होते हैं, पुण्यवानों के लिए कम।

२. लिंग, जाति, धन, विद्या और बहुत-सी बातों के भेदभावों को, जो साक्षात् नरक के द्वार हैं, संसार में ही सीमाबद्ध रहने दो। यदि तीर्थों के पवित्र स्थानों में ये भेदभाव बने रहेंगे, तो उनमें और नरक में क्या अन्तर रह जायेगा?

३. अपनी विशाल जगन्नाथपुरी है, जहाँ पापी और पुण्यात्मा, महात्मा और दुरात्मा, पुरुष, स्त्री और बालक, बिना किसी आयु के भेदभाव के सबको समान अधिकार है। वर्ष में कम से कम एक दिन के लिए सहस्त्रों स्त्री-पुरुष पाप और भेदभाव से छुटकारा पाते हैं और परमात्मा का नाम सुनते और गाते हैं। यह परम श्रेय है।

जो लोग मन्दिर में भी यह सोचते हैं कि यह वेश्या है, यह मनुष्य नीच जाति का है, दरिद्र है तथा यह मामूली आदमी है, ऐसे लोगों की संख्या (जिसे तुम सज्जन कहते हो) जितनी कम हो उतना ही अच्छा। क्या वे लोग, जो भक्तों की जाति, लिंग या व्यवसाय देखते हैं, हमारे प्रभु को समझ सकते हैं? मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि सैकड़ों वेश्याएँ आयें और उनके (ठाकुर के चरणों में अपना सिर झुकायें... श्रीप्रभु का द्वार सबके लिये खुला है।

१८९७ ई. का श्रीरामकृष्ण-जन्म-महोत्सव स्वामीजी की उपस्थिति के कारण विशेष महत्त्व रखता है। उनके देश-विदेश के भक्तों ने इस महोत्सव को मानो अन्तर्राष्ट्रीय रूप दे दिया था। स्वामीजी अपने गुरुभाइयों और अन्य अनुयायियों के साथ आलमबाजार मठ से पैदल चलकर दक्षिणेश्वर पहुँचे, मार्ग में बड़ी संख्या में लोग, 'जय रामकृष्ण की जय' 'जय विवेकानन्द की जय' की ध्वनि से आनन्द व्यक्त कर रहे थे। स्वामीजी दक्षिणेश्वर पहुँचकर माँ भवतारिणी को एवं तत्पश्चात् राधाकान्त मन्दिर में साष्टांग प्रणाम कर ठाकुर के कमरे में पहुँचे। प्रत्येक स्थान पर भक्तों की भीड़ उमड़ पड़ी थी। स्वामीजी अपनी अंग्रेज शिष्या कुमारी मुलर, श्रीमती सेवियर और शिष्य गुडविन को साथ लेकर ठाकुर के साधना-स्थल पंचवटी, बेलतला आदि गये। पथ में विजयकृष्ण गोस्वामी मिले, दोनों ने एक दूसरे को अभिवादन किया और कुशल-क्षेम पूछा। पंचवटी में भक्तप्रवर गिरीश घोष को देखकर स्वामीजी बोले – वह एक दिन था और आज यह एक दिन। गिरीशचन्द्र हँसकर बोले – हाँ, फिर भी इच्छा होती है और देखूँ। लोगों का तीव्र आग्रह था कि स्वामीजी की वाणी सुनें, परन्तु उनकी चेष्टा करने पर भी कोलाहल के कारण कुछ भी सुनना सम्भव नहीं हो पा रहा था। अन्तत: लोगों से मिलकर लगभग दो बजे स्वामीजी मठ लौट आये। पथ में शिष्य शरत्चन्द्र चक्रवर्ती से बोले – 'केवल दार्शनिक विचारों को लेकर क्या होगा, ये उत्सव आदि भी आवश्यक हैं। साधारण व्यक्ति धर्म, आत्मा यह नहीं समझ पाता है, वह

शेष भाग पृष्ठ ४२७ पर

शिवचामरचर्या

(छन्दः पञ्चचामरम्)

डॉ. सत्येन्दु शर्मा, रायपुर

नमाम्यहं त्रिलोचनं त्रिशूलिनं सदाशिवं
भुजङ्गभूषणं विभूतिभूषितं स्वयम्भुवम् ।
सुरासुरादिसेवितं सनातनं पुरातनं
सुधापतिं पिनाकधारिणं जगद्धितैषिणम् ।।१।।

– मैं सनातन और पुरातन स्वयम्भू भगवान् सदाशिव को नमन करता हूँ, जो चन्द्रमौलि, त्रिलोचन, त्रिशूलधारी, पिनाकधारी, सर्पों के आभूषणवाले, भस्म से विभूषित हैं, जगत् के सच्चे हितैषी हैं तथा जिनकी सेवा में देव-दानव आदि सदा उपस्थित रहते हैं।

अपह्नुता जटासु जाह्नवी हलाहलं गले
प्रहर्षितेन येन पन्नगस्य मालकं धृतम् ।
उमा हिमालयात्मजा त्रिलोकपुण्यकारिणी
समाश्रिता हि दक्षिणेतरे च येन तं भजे ।।२।।

– जिसने जटाओं में सुरसरित को और गले में हलाहल विष को छिपा रखा है एवं हर्षपूर्वक सर्पों की माला धारण की है। जिसने त्रिलोक पावनकारिणी हिमालयपुत्री उमा को अपने वाम भाग में आश्रय बना रखा है, मैं उस सदाशिव को भजता हूँ।

शशाङ्कशेखरं सहस्रसूर्यसन्निभप्रभं
शुभावहं श्मशानवासिनं स्वतन्त्रशासनम् ।
नगाधिराजयोगिराजभोगिराजवन्दितं
मुनीन्द्र भावलक्षितं मनोजवैरिणं भजे ।।३।।

– मस्तक पर शशांक धारण करनेवाले, हजारों सूर्य समान प्रभायुक्त, समस्त शुभों के वाहक, श्मशानवासी, स्वशासनाधीन रहनेवाले, पर्वतराज हिमालय, श्रीकृष्ण और नागराज वासुकि द्वारा वन्दित होनेवाले तथा श्रेष्ठ मुनिजनों द्वारा भाव में परिलक्षित होनेवाले, कामरिपु उस सदाशिव को मैं भजता हूँ।

कृपाकरं कपालिनं कपर्दिनं कलाधरं
कृशानुसदृशं क्रतुप्रियं च कामपूरकम् ।
वरानन वृषध्वजं विमुक्तिदायकं विभुं
वरप्रदायकं सदा स्वभक्तवत्सलं भजे।।४।।

– कपर्दी, कलाधारक, कपालधारी, वृषध्वज, अग्नि सदृश दीप्त, यज्ञप्रेमी, कृपा के निधान, सब की कामनाएँ पूर्ण करनेवाले, सर्वोत्तम मुखवाले, वरदान देनेवाले, मुक्तिप्रदान करनेवाले और अपने भक्तों पर सदा वात्सल्य रखनेवाले उस सर्वव्यापी सदाशिव को मैं भजता हूँ।

महीश्वरं महेश्वरं गिरीश्वरं गुणेश्वरं
गणेश्वरं नटेश्वरं सुरेश्वरं सुखेश्वरम् ।
यतीश्वरं फणीश्वरं सतीश्वरं हरीश्वरं
भयेश्वरं भवेश्वरं हरं निरन्तरं भजे ।।५।।

– जो महेश्वर मही के स्वामी हैं, पर्वत के स्वामी हैं, सत्त्व आदि तीनों गुणों के स्वामी हैं, गणों के स्वामी हैं, सुख के स्वामी हैं, नटों के स्वामी हैं, यतिजन के स्वामी हैं, समस्त सर्पों के स्वामी हैं, सती के स्वामी हैं, हरि के स्वामी हैं, भय के स्वामी हैं, भव के स्वामी है और सभी देवताओं के अधिदेवता हैं, उस हर को मैं निरन्तर भजता हूँ।

स्वजीवने नमः शिवाय सन्ततं जपन्ति ये
समाप्नुवन्ति साधकाः शिवेन सर्ववाञ्छितम् ।
स्मरन्ति ये सदा शिवं वशं नयन्ति ते शिवं
भवार्णवं तरन्ति ते शिवं व्रजन्त्यसंशयम् ।।६।।

– जो साधक जीवन में 'नमःशिवाय' मन्त्र का लगातार जप करते हैं, वे भगवान् शिव से अपनी सारी कामनाएँ प्राप्त कर लेते हैं। जो हमेशा शिव का स्मरण करते हैं, वे भगवान् शिव को वशीभूत कर लेते हैं और निस्सन्देह रूप से इस संसार-सागर को पार कर शिव को प्राप्त कर लेते हैं।

सच्चिदानन्द कैसे हैं, कोई नहीं बता सकता। इसीलिए वे पहले अर्धनारीश्वर बने। जानते हो, उन्होंने ऐसा क्यों किया? यह दिखाने के लिए कि वे स्वयं ही प्रकृति, पुरुष दोनों हैं। फिर एक सीढ़ी नीचे उतरकर वे अलग-अलग पुरुष और प्रकृति बने। – श्रीरामकृष्ण देव

धीरज का अदम्य साहस

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो, इस बार हम 'बच्चों का आँगन' की इस शृंखला में वीरता के बारे में बात करेंगे। चूँकि अगस्त का महीना है। इसी माह की १५ तारीख को स्वतंत्रता दिवस भी मनाया जाता है। भारत को स्वतंत्रता दिलाने के लिए बहुत सारे स्वतंत्रता सेनानी वीरगति को प्राप्त हो गये। किसी भी विषय पर विजय प्राप्त करने के लिए शारीरिक बल के अतिरिक्त, धैर्य, बुद्धि, संयम और साहस की आवश्यकता होती है। तो आओ बच्चो, आज हम इसी विषय पर चर्चा करते हुए राष्ट्रीय बाल पुरस्कृत बिहार के धीरज कुमार के साहस के बारे में जानते हैं।

धीरज कुमार यादव के पिता का नाम श्री राजबली यादव है तथा वह योगापट्टी प्रखंड चौमुखा वार्ड संख्या ६ बेतिया, पश्चिम चम्पारण (बिहार) का निवासी है। उसने २ सितम्बर को अपने साहस का परिचय देते हुए एक मगरमच्छ से लड़ाई कर अपने छोटे भाई की जान बचाई थी। २ सितम्बर, २०२० को धीरज कुमार और उसका छोटा भाई नीरज कुमार भैंस चराने गये थे। धीरज कुमार की उम्र १४ साल और नीरज कुमार की उम्र ११ साल थी। भैंस चराते-चराते दोनों भाई गण्डक नदी में चले गये और भैंस को नहलाने लगे।

धीरज कुमार यादव

जब वे अपनी भैंस को नहला रहे थे, तभी एक मगरमच्छ ने उसके छोटे भाई नीरज कुमार पर हमला कर दिया। मगरमच्छ ने मेरे भाई को पकड़ लिया, यह देखकर धीरज मगरमच्छ से जा भिड़ा। भैंस चरानेवाले डण्डे से वह मगरमच्छ को बार-बार मारने लगा और वह तब तक उस मगरमच्छ को मारता रहा जब तक मगरमच्छ ने उसके भाई को नहीं छोड़ दिया।

अपने साहस से उसने मगरमच्छ को हरा कर अपने छोटे भाई की जान बचा ली। इस लड़ाई में दोनों भाई बुरी तरह घायल हो गये थे। उनका बेतिया के एक छोटे-से अस्पताल में ७ दिनों तक उपचार चलता रहा।

धीरज के पिता राजबली यादव किसान हैं। उसकी माता घर के कार्यों के बाद खेती के कार्यों में हाथ बटाँती हैं। दोनों भाई धीरज और नीरज भी गाँव के विद्यालय में पढ़ाई के बाद खेती के कार्यों में पिता का हाथ बटाँते हैं।

धीरज से जब माननीय प्रधानमंत्री (श्री नरेन्द्र मोदी जी) ने पूछा कि आप के साथ जो घटना घटी उसका सामना आपने कैसे किया?

धीरज ने कहा – मैं और भाई भैंस को नहला रहे थे, तभी मगरमच्छ ने भाई पर हमला कर दिया था। मैं भाई को बचाने के लिये मगरमच्छ से लड़ पड़ा और घायल भी हो गया था, पर भाई को घर ले आया, फिर वहाँ से भाई को अस्पताल भी ले गया। उस समय मैं १४ साल का था।''

नरेन्द्र मोदी जी – भाई उस घटना को याद करता है?

धीरज – डर लगता है उसे, नदी के किनारे नहीं जाता।

प्रधानमंत्री मोदी जी – मगर इतना बड़ा दिखा, तो डर नहीं लगा?

धीरज – मुझे केवल मेरा भाई दिख रहा था और कुछ नहीं।

उस समय मोदी जी कहते हैं कि आपने अपने भाई को बचाया ऐसा साहस, संयम और बुद्धिमत्ता भी आपने दिखाई। आप जैसे बालक अपने भीतर की सारी शक्तियों को प्रकट करते हुए जीवन बचाते हैं, तो प्रेरक बन जाते हैं। आगे क्या बनोगे?

धीरज कहता है – फौजी बन कर देश की सेवा करूँगा।

धीरज के इस साहस के कारण उसे २६ जनवरी, २०२२ को राष्ट्रीय बाल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

संकट के समय अपनी जान की परवाह किये बिना दूसरों की रक्षा और सहायता करना सच्ची वीरता है। इस कड़ी में एक बालक ने अपनी सूझबूझ और वीरता का परिचय दिया है। बच्चो ! यदि आप को भी कभी ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़े, तो पूर्ण साहस के साथ वीरता का परिचय देना, जैसाकि धीरज कुमार ने किया। ○○○

प्रश्नोपनिषद् (३८)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः स परेऽक्षर आत्मनि सम्प्रतिष्ठ ते।।९।। (५०)

अन्वयार्थ – हि (निश्चय ही) एषः (कर्तृत्व-भोक्तृत्व उपाधि के साथ शरीर में प्रविष्ट हुआ, यह जो) – द्रष्टा (देखनेवाला), स्प्रष्टा (छूनेवाला), श्रोता (सुननेवाला), घ्राता (सूँघनेवाला), रसयिता (स्वाद लेनेवाला), मन्ता (मनन करनेवाला), बोद्धा (निश्चय करनेवाला), कर्ता (कार्य करनेवाला), विज्ञानात्मा (विज्ञाता स्वरूपवाला) पुरुषः (पुरुष है), (उपाधि छूट जाने पर) सः (वही) परे (सर्वोत्तम) अक्षरे (कभी क्षय न होनेवाले) आत्मनि (आत्मा में) सम्प्रतिष्ठते (सम्यक् रूप से स्थित हो जाता है)।।

भावार्थ – निश्चय ही, (कर्तृत्व-भोक्तृत्व उपाधि के साथ शरीर में प्रविष्ट हुआ) यह जो देखनेवाला, छूनेवाला, सुननेवाला, सूँघनेवाला, स्वाद लेनेवाला, मनन करनेवाला, निश्चय करनेवाला, कार्य करनेवाला, विज्ञाता स्वरूपवाला पुरुष है, (उपाधि छूट जाने पर) वह सर्वोत्तम, कभी क्षय न होनेवाले, आत्मा में सम्यक् रूप से स्थित हो जाता है।।

भाष्य – एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा विज्ञानं विज्ञायते अनेन इति करणभूतं बुद्धि-आदि इदं तु विजानाति इति विज्ञानं कर्तृ-कारक-रूपं तदात्मा तत् स्वभावो विज्ञातृ-स्वभाव इत्यर्थः।

भाष्यार्थ – और यही (जीवात्मा) देखनेवाला, छूनेवाला, सुननेवाला, सूँघनेवाला, स्वाद लेनेवाला, मनन करनेवाला, निश्चय करनेवाला कर्ता है। विज्ञान शब्द का अर्थ है – जिसके द्वारा कोई ज्ञान प्राप्त हो अर्थात् बुद्धि आदि उपकरण; परन्तु यह शब्द यहाँ कर्ता के रूप में प्रयुक्त हुआ है, अर्थात् वह जो जानता है। वस्तुतः (यहाँ) विज्ञानात्मा का अर्थ है – वह जो स्वभाव से ही विज्ञाता है।

भाष्य – पुरुषः कार्य-करण-संघात-उक्त-उपाधिपूर्णत्वात् पुरुषः। स च जल-सूर्यकादि-प्रतिबिम्बस्य सूर्यादि-प्रवेशवत् जगद्-आधार-शेषे परेऽक्षर आत्मनि संप्रतिष्ठते।।९।।

भाष्यार्थ – शरीर तथा इन्द्रियों के संघात रूपी उपरोक्त उपाधि को पूर्ण करने के कारण वह पुरुष है। और जैसे जल में प्रतिबिम्बित सूर्य (जल को हटा लेने पर) सूर्य में ही प्रविष्ट हो जाता है, वैसे ही यह जीवात्मा भी पूरी तरह से उस सर्वोच्च अक्षर ब्रह्म में स्थित हो जाता है, जो इस जगत् का अन्तिम आश्रय है।।४/९।। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ४२४ का शेष भाग

उत्सव के आनन्द के सहारे धीरे-धीरे धर्म सीखने की चेष्टा करता है।' श्रीरामकृष्ण–जन्मोत्सव १८८१ ई. से दक्षिणेश्वर में आरम्भ हुआ एवं १८९४ ई. में यह लोकप्रिय हो चुका था। ठाकुर के संन्यासी और गृहस्थ शिष्यों के संयुक्त उद्यम से यह क्रमशः प्रभावशाली होता गया। इस कार्य के लिये धन संग्रह गृहस्थ शिष्य करते थे और मठ के संन्यासी उत्सव की व्यवस्था में योगदान करते थे। स्वामी विवेकानन्द अमेरिका से आवश्यक उपदेश, निर्देश, उत्साहवर्धन करते रहे। फलस्वरूप यह वार्षिकोत्सव धनी-दरिद्र, मूर्ख–विद्वान, पापी–पुण्यात्मा और सभी जाति के लोगों में ठाकुर के जीवन एवं वाणी के प्रचार का लोकप्रिय माध्यम हो गया था। १८९८ ई. में मठ गंगा के पश्चिमी तट पर स्थानान्तरित हो चुका था, परन्तु वहाँ समतल भूमि न होने के कारण निकट के एक भक्त परिवार के गृह-परिसर में आयोजित किया गया था। उसके बाद उत्सव प्रति वर्ष बेलूड़ मठ की निजी भूमि पर ही होने लगा। **(क्रमशः)**

श्रीरामकृष्ण का आकर्षण

स्वामी अलोकानन्द, रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

अनुवाद – अवधेश प्रधान, वाराणसी

प्रभुदयाल मिश्र

श्रीरामकृष्ण को प्रत्यक्ष रूप से देखकर अनेक लोगों ने आकर्षण का अनुभव किया था, उन्होंने भी उनको किस प्रकार अपनी ओर खींच लिया, यह हम कई लोगों के जीवन में देख चुके हैं। अभी हम ऐसे व्यक्ति का जीवन देखेंगे, जो ध्यानयोग से श्रीरामकृष्ण की मूर्ति का दर्शन करके आकृष्ट हुए थे।

प्रभुदयाल मिश्र। जन्म-स्थान भारत का पश्चिमी अंचल। वे क्वेकर संप्रदाय के ईसाई साधु थे, किन्तु अन्दर हिन्दू वेदान्त संन्यासी का भाव रखते थे। पश्चिमी भारत में किसी स्थान पर ईसाई पद्धति से ईश्वर की उपासना में निरत प्रभुदयाल मिश्र के मन में एक दिन उपासना के समय यह जानने की इच्छा हुई कि इस समय धरती पर आध्यात्मिकता में सबसे उच्च स्थान के अधिकारी कोई हैं या नहीं? इस विचार पर ध्यान करते-करते उन्होंने दो व्यक्तियों के दर्शन किए। इनमें एक व्यक्ति उच्च स्थान के अधिकारी प्रतीत हो रहे थे, दूसरे व्यक्ति उनके चरणों में बैठे थे ! वे भी कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे फिर भी उन्होंने इतनी उच्च अवस्था अभी प्राप्त नहीं की थी।

ध्यान-नेत्रों से दर्शन करके इस व्यक्ति के प्रति उन्होंने आकर्षण का अनुभव किया और उनकी खोज में उन्होंने भारत के विभिन्न क्षेत्रों में परिभ्रमण किया। अन्त में वे किसी प्रकार से श्रीरामकृष्ण के समीप आए। इसका वर्णन उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है, ''इस प्रकार का दर्शन प्राप्त होने के बाद मेरी धारणा हुई, निश्चय ही ऐसे व्यक्ति हैं, किन्तु वे हैं कहाँ? कहाँ जाने से उनका साक्षात्कार प्राप्त होगा? मैं कई देशों-प्रदेशों में उन्हीं की खोज में घूमता रहा। सामान्यत: दूर पश्चिमी प्रदेश में ही साधुओं-फकीरों का आश्रय स्थान है। इसीलिए इन सब स्थानों पर बहुत खोज करने के बाद असफल होकर अन्त में गाजीपुर में पवहारी बाबा नाम से विख्यात एक साधु के रहने की बात सुनकर मैं उन्हीं का दर्शन करने पहुँचा। किन्तु उनके साथ मेरी ध्यानलब्ध मूर्ति का कोई सादृश्य न देखकर मैं अत्यन्त निराश हो गया। उसी समय उन्हीं के कमरे में स्थित एक छवि पर मेरी दृष्टि पड़ते ही मैं आश्चर्यचकित हो गया। देखा कि यह तो ध्यान में मेरी देखी हुई ठीक वही मूर्ति है। तब मैंने उन्हीं से पूछा कि यह किसका चित्र है? उन्होंने बताया कि इनका नाम रामकृष्ण परमहंस है। तब उनसे पूछा कि इनका दर्शन प्राप्त करने के लिए कहाँ जाना पड़ेगा? उन्होंने बताया कि वे पूर्व में दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर में रहते हैं। इस समय किसी संकटमय व्याधि से ग्रस्त होने पर इनको चिकित्सा हेतु कलकत्ते में किसी स्थान पर ले जाकर रखा गया है, आपको कलकत्ते में उनका पता चल जाएगा। इसीलिए उनके निर्देशानुसार कलकत्ते में आकर वे इस समय यहीं हैं, यह सुनकर उपस्थित हुआ हूँ।''[१२६]

कहाँ भारत के पश्चिमांचल में प्रभुदयाल का आवास और कहाँ पूर्वी प्रदेश में कलकत्ता शहर के श्यामपुकुर में अस्वस्थ श्रीरामकृष्ण ! क्या ही अदृश्य संयोग है ! क्या ही अनजान डोरी का आकर्षण है ! ध्यानावस्था में उनकी इच्छा हुई आध्यात्मिक उच्च भावसम्पन्न पुरुष को देखने की और आँखों के सामने प्रकट हो गए, तब भी अनेकों के लिए अज्ञात श्रीरामकृष्ण परमहंस। खोज करते-करते गाजीपुर में श्रीरामकृष्ण की छवि का दर्शन हुआ। उसके बाद दृढ़ निश्चय के साथ खोज करते-करते कलकत्ते पहुँच गए। इधर श्रीरामकृष्ण डोरी खींच रहे हैं, इस बात का उन्हें आभास भी नहीं। श्यामपुकुर में एक दिन शौचादि करके आए और बरामदे में खड़े होकर रामदादा से बोले, ''देखो जी, एक खूब बलिष्ठ शरीरवाले गेरुआ रंग की लंगोटी पहने साधु को देखा। क्या जानूँ बापू ! लेकिन पहले कभी देखा नहीं।'' रामदादा ने हँसते-हँसते कहा, ''वह मैं क्या जानूँ महाशय ! आप जब तब कितना क्या दर्शन करते रहते हैं, स्वर्ग लोक, मर्त्य लोक में कितना क्या देखते घूमते रहते हैं, उसकी

खबर हम क्या जानें?'' ठाकुर मृदु हास्य हँसते हुए बोले, ''हाँ जी, यद्यपि मैंने ऐसा देखा, लेकिन बापू क्या जानूँ, वह कौन है? प्रत्यक्षदर्शी मणीन्द्रकृष्ण गुप्त के शब्दों में घटना इस प्रकार है, ''ठाकुर धीरे-धीरे जाकर अपने बिछौने पर बैठ गए। रामदादा और दूसरे सभी लोग ठाकुर के सम्मुख जाकर बैठे। लेकिन मैं तब दुतल्ले पर जाने की ऊपरी सीढ़ी के पास वाले घर में जाकर बैठा। बाद में लगभग एक घंटा बाद एक व्यक्ति को सीढ़ी से चढ़कर आते हुए देखा। वह काले रंग का कोट और सिर पर काले रंग की टोपी पहने हुए था। देखकर लगा कि बिहार प्रदेश का कोई आदमी है। सीढ़ी वाले घर के दरवाजे के सामने से आते ही उन्होंने हम लोगों से पूछा, ''महाशय, इस मकान में क्या परमहंस देव रहते हैं? मैं उनका एक बार दर्शन करने के लिए आया हूँ, इस समय दर्शन हो सकता है क्या?'' हमने भी तब 'जी हाँ, आइए' कहकर उनको साथ लेकर ठाकुर के घर में ले गए।''[१२७]

अद्भुत संयोग ! उसके बाद प्रभुदयाल ने अपने दर्शन की बात जो कही थी, वह हमने पहले ही देखा है। प्रभुदयाल इसके बाद 'यह वेश असली नहीं है' यह बात कहकर कोट का बटन खोलकर पाजामा भी जब थोड़ा ही खोला था, उसी समय ठाकुर समाधिस्थ हो गए। मणीन्द्रकृष्ण गुप्त लिखते हैं, ''ठीक उसी समय परमहंस देव भी सहसा खड़े होकर चित्र में जिस प्रकार ईसा मसीह की मूर्ति दिखाई देती है, उसी रूप में हाथ उठाकर समाधिस्थ हो गए। यह दृश्य देखते ही वह साधु भी उसी समय थरथर काँपते हुये घुटने टेककर बैठ गया और हाथ जोड़कर एकटक परमहंस देव की उसी खड़े-खड़े समाधिस्थ मूर्ति की ओर देखता रह गया। उसकी दोनों आँखों से आँसू झरने लगे।''[१२८]

प्रभुदयाल ध्यान योग में आकृष्ट हुए थे।

मिसेस ह्वीलर

कहाँ भारत ! कलकत्ता – दक्षिणेश्वर ! उस समय श्रीरामकृष्ण अपने ही देश में प्राय: अज्ञात थे ! किन्तु उन्होंने स्वप्नयोग से समुद्रपार की एक महिला को अपनी ओर खींचा। अमेरिका उस समय सहजगम्य देश नहीं था। समाचार भी आजकल की तरह तत्काल फैल जाने का कोई साधन न था ! लेकिन दैवी आकर्षण यह सब बाधाएँ नहीं मानता।

१८९७ ई. में स्वामी सारदानन्द उस समय न्यूयार्क में वेदान्त प्रचार में लगे थे। वे मॉन्ट कलेयर में भक्तिमती महिला ह्वीलर के मकान में रहते थे। महिला बहुत दिनों से वेदान्त की वक्तृताएँ सुनती आ रही थीं। स्वामी विवेकानन्द के भी सम्पर्क में आई थीं। अच्छा लगता था, इसीलिए वेदान्त के व्याख्यान सुनने आती थीं। केवल अच्छा भर ही नहीं लगता था, बहुत समय पहले स्वप्न में देखे एशिया के महापुरुष के देश से ये लोग आए हैं, इसीलिए उन लोगों पर भी श्रद्धा रखती थीं। लेकिन वे तब भी नहीं जानती थीं कि ये लोग उन्हीं स्वप्नदृष्ट महापुरुष के शिष्य हैं, उन्हीं के हाथों गढ़े गए हैं। महिला की उम्र उस समय ४५ वर्ष थी। इसके बाद का वर्णन इस प्रकार है, ''एक दिन क्लास के बाद स्वामी सारदानन्द अपनी जेब में रखी नोटबुक से ठाकुर का एक चित्र निकालकर दिखाते हुए बोले, ''देखो जिनकी बातें बोलता हूँ, उनका यह चेहरा है !'' यह चित्र देखकर मिसेस ह्वीलर चौंक पड़ीं और बोलीं, ''जब मेरी उम्र २०-२५ वर्ष थी, उस समय मैंने स्वप्न में पहली बार इन महात्मा का दर्शन प्राप्त किया। तभी से मुझ पर सुख-दुख पड़ने पर हमेशा उनको देखती थी, यही – हाँ, बिलकुल यही, अनन्त दया करके, पिता की तरह मेरे सिर के एक किनारे आकर सिर पर हाथ फिराते हैं। इसी से एशिया के लोगों के ऊपर मेरी अत्यन्त श्रद्धा है। देश से कोई नया व्यक्ति आए या पूर्व देश के बारे में कोई कथा-वार्ता या व्याख्यान कोई विद्वान दे, तो समाचार पाते ही में दौड़ पड़ती हूँ। तुम लोगों का यह वेदान्त आंदोलन मुझे अच्छा लगता है। स्वप्न में देखे हुए महात्मा के देश के लोगों के कंठ से इन सबका उच्चारण जो हो रहा है !''[१२९]

श्रीरामकृष्ण ने एक बार कहा था, ''मैं एक नई जगह पर गया था। वहाँ कैसे-कैसे तो लोग थे। गोरे-गोरे ढेर सारे लोग। उनकी आँखें नीली थीं। एक नया देश।'' इसी प्रकार क्या उन्होंने अपने दैवी आकर्षण की डोरी का विस्तार अमेरिका तक किया था?

श्रीरामकृष्ण के खिंचाव में दैवी आकर्षण की क्या ही अबाध, अनुपेक्षणीय शक्ति है, यह हमने विभिन्न लोगों के जीवन में देखा ! लेकिन प्रश्न उठता है, क्या यह आकर्षण समाप्त हो गया? नहीं, यह आकर्षण शाश्वत है, सनातन है। पूर्वकाल में श्रीमद्भागवत के आकर्षण से जिस प्रकार बहुत से लोगों का जीवन आकृष्ट हुआ था, वर्तमान में भी

वह आकर्षण उसी प्रकार अपना कार्य कर रहा है, भविष्य में भी करता रहेगा। यह आकर्षण, यह वंशीध्वनि अब जारी है। उन्मुख हृदय यह अनुभव करते हैं, उत्कृष्ट भक्त इसे सुन पाते हैं और उस आकर्षण की ओर अबाध गति से दौड़ पड़ते हैं। अन्त में वे प्राप्त करते हैं चिर शान्ति, प्रशान्ति, शाश्वत शान्ति, 'नेतरेषाम्' – दूसरे नहीं !

फणीश्वरनाथ रेणु

फणीश्वरनाथ रेणु। इनका जन्म १९२१ ई. में ४ मार्च को बिहार के पूर्णिया जिले के औराहीं हिंगना नामक गाँव में हुआ था। ये अत्यन्त आधुनिक काल के एक सम्पूर्ण विपरीत रुचि के आदमी थे। धर्म से कोई सम्पर्क नहीं। नास्तिक ! समाजवादी आंदोलन से जुड़ाव। प्रारम्भिक शिक्षा अररिया फारविसगंज में हुआ था। मैट्रिकुलेशन विराटनगर आदर्श विद्यालय, नेपाल में। आई. ए. पास किया काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से। इसके बाद १९४२ में स्वाधीनता आंदोलन में योगदान दिया। हिन्दी साहित्य के महत्त्वपूर्ण रचनाकार। कहीं कोई धर्म का प्रश्रय नहीं। जीवन दृष्टि असंयत थी।

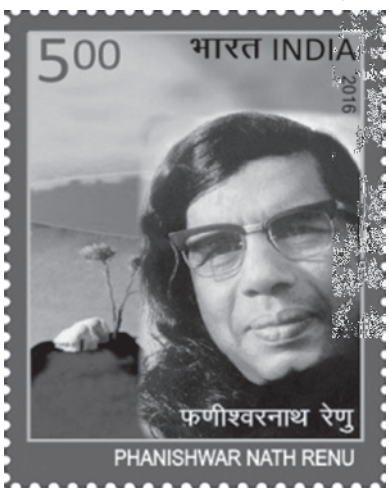

१९४२ के आन्दोलन में भाग लेने के कारण जेलयात्रा हुई ! कठिन प्लूरिसी रोग से ग्रस्त हो गए। १९५२ में लतिका मुखर्जी के साथ विवाह सूत्र में आबद्ध हुए। लेकिन बोहेमियन जीवन में कोई परिवर्तन नहीं। अत्यधिक मद्यपान के कारण १९५८ में बुरी तरह बीमार हो गए। खून की उलटी शुरू हो गई। जीने की आशा नहीं रही। इसी अवस्था में एक अलौकिक दर्शन और डॉक्टर की लौकिक सहायता से जान बच गई। जीवन में एक परिवर्तन आया। इसके बाद ये निरन्तर साहित्य साधना में लगे रहे।

पाठक के मन में विचार आ सकता है कि इसका श्रीरामकृष्ण के साथ क्या सम्बन्ध है? यह चर्चा कहीं अप्रासंगिक तो नहीं है। लेकिन श्रीरामकृष्ण के समीप आने के लिए कितना कष्ट उठाना पड़ता है! कितनी साधना, कितनी प्रतीक्षा और मानसिक संघर्ष पार करना पड़ता है, वह सारी कहानी हम इससे पहले देख चुके हैं। अन्यान्य प्रसंगों में श्रीरामकृष्ण के दैवी आकर्षण या खिंचाव को हम अनुभव कर चुके हैं। इसीलिए फणीश्वरनाथ भी कोई अपवाद नहीं हो सकते। वे मछली को पकड़ने से पहले तरह-तरह से खेलाते हैं। नाना घात-प्रतिघात के बीच से क्षेत्र प्रस्तुत करके श्रीरामकृष्ण उनमें अनुराग का बीज वपन करने चले थे।

इससे पहले हमने देखा है कि वे लोग किस प्रकार श्रीरामकृष्ण के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आए थे। श्रीरामकृष्ण के स्थूल देह में रहते समय ही वे उनके आकर्षण में लोकमुख से, या मित्रों की गोष्ठी में श्रीरामकृष्ण का महत्त्व श्रवण करके आए थे। गिरीशचन्द्र की जीवनधारा ही अनेकांश में फणीश्वरनाथ से मेल खाती है। रामकृष्ण-विवेकानन्द के सम्बन्ध में गवेषणापूर्ण लेखन करनेवाले शंकरीप्रसाद बसु ने बिलकुल सही लिखा है, ''श्रीरामकृष्ण गिरीशचन्द्र घोष के जीवन में प्रत्यक्ष सम्पर्क के द्वारा रूपान्तरण लाए थे। स्पर्श की यह कहानी यहीं समाप्त नहीं हुई। उनके अप्रत्यक्ष स्पर्श से कितने लोगों के जीवन में आश्चर्यजनक रूपान्तर हुआ है, उन सबकी कहानियाँ हमें ज्ञात नहीं है और ज्ञात करना सम्भव भी नहीं है। लेकिन कहानी हमें मालूम है; लौकिक अलौकिक घेरेबंदी को तोड़ देनेवाली वह कहानी आधुनिक हिन्दी साहित्य के एक विशिष्ट लेखक की है, जिनका नाम है फणीश्वरनाथ रेणु।''[१३०] गिरीशचन्द्र श्रीरामकृष्ण के प्रत्यक्ष सम्पर्क से सोना हुए थे, किन्तु फणीश्वरनाथ रेणु ने उनके अप्रत्यक्ष सम्पर्क से पुण्य रेणु में परिणत होकर सौरभ बिखेरा था। इस प्रकार उनका जीवन एक आश्चर्यजनक रूप से रूपान्तरित जीवन है।

१९६० ई.में वे पहली बार श्रीरामकृष्ण मन्दिर में गए। मन में अनेक द्वन्द्व थे, दु:ख था, इस दुख-द्वन्द्व को भुलाने के लिए वे मदिरा-पान करते। सामयिक तौर पर शान्ति मिल जाती। लेकिन मन के अतल में दुख-द्वन्द्व उनको निरंतर अशान्त रखता। इसी अवस्था में १९६० में किसी एक दिन वे पटना के रामकृष्ण मिशन आश्रम में गए। वहाँ के अध्यक्ष स्वामी वीतशोकानन्द जी से परिचय हुआ। जीवन में शान्ति उतर आई, परिवर्तन हुआ। यह कहानी हम उन्हीं के शब्दों में सुनेंगे। स्वामी सोमेश्वरानन्द ने १९६५-६९ के बीच कभी उनका साक्षात्कार लिया था। उस समय रेणुजी

रामकृष्ण मिशन में स्वामी माधवानन्द जी से दीक्षा प्राप्त करके रामकृष्ण भावधारा में घुल-मिल गए थे। उन्होंने कहा था, ''स्वामीजी की 'काली द मदर' कविता असली जीवन की छवि है। सातू महाराज (स्वामी वीतशोकानन्द) ने मुझे यह समझा दिया था।

स्वामी सोमेश्वरानन्द – किस प्रकार?

रेणु जी – बहुत पहले की बात है। उस समय मैं आश्रम में विशेष जाता न था। महात्माओं से मेरा परिचय न था। एक दिन रात को लगभग १० बजे खूब शराब पीकर आश्रम के मन्दिर में प्रवेश कर ठाकुर के बंद दरवाजे के सामने लेटकर होंय-होंय करके रोने लगा। लगभग दस-बारह मिनट रोने के बाद एक महात्मा ने मुझे पकड़कर उठाया और पूछा – आप रो क्यों रहे हैं? मैंने कहा – मेरे मन में बहुत दुख है स्वामीजी। वे मेरा हाथ पकड़कर बरामदे में ले गए। कुर्सी पर बैठाकर बोले – जीवन में तो सुख-दुःख रहता ही है। उसे लेकर क्यों चिन्ता करते हैं?

स्वामी सोमेश्वरानन्द – यह फिलासोफी आपको भा गई।

रेणु जी – फिलासोफी नहीं। मैं यह देखकर अवाक् रह गया कि मेरे मुँह से शराब की गंध उठती देखकर भी उन्होंने मुझसे घृणा नहीं की। तभी से मैं आश्रम में नियमित जाने लगा, दूसरे महाराज लोगों के भी साथ बातचीत हुई।''[१३१]

श्रीरामकृष्ण ने क्या इसी प्रकार रेणु जी को अपनी ओर खींचा? क्या रेणु जी के मन के किसी दीर्घकालीन द्वन्द्व की परिणति पटना आश्रम के श्रीरामकृष्ण मन्दिर में उनके इस आत्मसमर्पण में हुई? इसे समझने के लिए उन्हीं की आत्मकथा की ओर लौटना होगा। वह एक अविस्मरणीय, अलौकिक दैवी अनुभूति थी ! वह घटना नौ वर्ष पहले घटी थी। १९५१ ई. में भयानक बीमारी हुई। रेणु जी को टी. बी. हो गई थी। खून की उल्टी होती थी। अस्पताल में भर्ती हुए। बचने की सम्भावना न थी। डॉक्टर ने जवाब दे दिया था। लेकिन एक अलौकिक दर्शन के बाद वे स्वस्थ हो गए। कहा जा सकता है कि एक नए जीवन में उनका प्रवेश हुआ। इस घटना का विवरण उन्होंने 'श्रुत-अश्रुत पूर्व' शीर्षक पुस्तक के 'रस के बस में चार रात' शीर्षक लेख में लिखा है। यह अंश उनके मूल लेख से यहाँ उद्धृत किया जा रहा है –

''मुझे बार-बार अस्पताल के उस महान दिन की याद आती है, उन क्षणों की याद आती है, जब मैंने ठीक इसी तरह इस 'मूरत' को भाव-विह्वल होकर बोलते देखा था। उन क्षणों – उस दिन के पहले तक रामकृष्ण की तस्वीर को देखकर – मेरे मन में कभी भक्ति नहीं उमड़ी। बल्कि अश्रद्धा ही अधिक होती थी। और, मैं उनके सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता था। न कभी जानने की उत्सुकता हुई।...

''...दो-दो बालटी रक्त मैं उगलकर ठंढ़ा होता जा रहा था। उस दिन हमारे वार्ड में आधा दर्जन से अधिक व्यक्ति मर चुके थे। पंखा बंद था, नल में पानी नहीं। मेरी जीभ पर...गोंद... मेरी साँसों को कोई गोंद से चिपकाकर... फेफड़े का रोगी, अंतिम क्षणों तक होश में रहता है,... त्राहि त्राहि मची हुई वार्ड में... मुझे रह-रह कर नींद आती है... गंध, दुर्गंध भीषण नरक – आँखे खुलते ही एक छाया मेरे चेहरे पर झुकी हुई – हट गई छाया ! समझ गया – यह उचक्का मेहतर हर वार्ड में मरणासन्न लावारिस 'रोगियों' के इर्द-गिर्द मंडराता है। मरा कि टूटा !! वह परीक्षा कर रहा था – साँस चल रही है या नहीं। मुझे जिन्दा देखकर छिटककर अलग जा खड़ा हुआ। मैंने तकिये के नीचे रखी हुई घड़ी-कलम को टटोल कर देखा। हाथ शायद तकिये के नीचे ही रहा और फिर सो गया। हालाँकि, जगे रहने की अन्तिम दम तक मैंने चेष्टा की।...

''एक पागल या नशाबाज-दाढ़ीवाला हाथ में गांजे का चिलम लेकर धुँआ उड़ाता हुआ मेरे पास आता है। जोर से धुँआ मेरी ओर फेंक कर हँसता है – ठठाकर ! ... वह मुझसे पूछता है कि तुम रो क्यों रहे हो? और आश्चर्य – बंगला में पूछता है – फिर हँसकर कहता है – 'दुर् साला ! काँदछिल केनो?' मैं कहता हूँ – 'मुझे बहुत काम करना था, लेकिन यह नींद।... मैं सोना नहीं चाहता।' दाढ़ीवाला गंभीर होकर, व्यंग्य भरी मुद्रा में कहता है – 'देश का बंटाधार तो कर दिया अब क्या?... साला देशेर सेबक' ... सेबकेर जालाय लोके बाय-बाय कोर्बे... तोमार तो कलम सोनार'... 'हाँ हाँ, पार्कर-फिफ्टीवन है न !' मैं लजाकर कहता हूँ। दाढ़ीवाला बोला – 'इस सोने कलम से क्या-क्या लिखा? कभी मेरा नाम लिखा?... दुर् साला किच्छुई जाने ना – हो हो हो – दुर् साला – तोर किच्छुई नेई – तुमी भालो – तुमी रोगी नउ – तुमी सुस्थ – तुमी सुस्थ – उठो।...'

''आँख खोलकर देखा – वार्ड के बरामदे में धूप है !

लगा, मैं स्वस्थ हो गया। डेढ़ साल से चढ़ा हुआ बुखार आज आधा डिग्री उतरा – पहली बार ! डॉक्टर हर्ड साहब आए – 'क्राइसिस की रात कट गई।'

''... अस्पताल से निकलकर, दूसरे दिन एक किताब की दुकान पर गया। बंगला पुस्तकों में एक 'गेट अप' ने आकर्षित किया। परमपुरुष रामकृष्ण परमहंस। लेखक – अचिन्त्य कुमार सेनगुप्त।... प्रच्छद पट परिकल्पना – सत्यजीत राय। (उस समय तक फिल्म डायरेक्टर नहीं हुए थे) – और और – अंदर फोटोग्राफ देखकर – मैं घबरा गया था। यह तो-तो-तो उस दिन – छह-सात महीने पहले अस्पताल में उस महान दिन को – उस रात को – यही मूरत??

''रामकृष्ण विवेकानन्द साहित्य पढ़ना शुरू किया।... वर्षों के भूखे-प्यासे आदमी को भोजन मिला हो, मानो बार-बार पढ़कर भी तृप्ति नहीं होती।... रामकृष्ण की छबि के सामने, विधिपूर्वक !... अपना पहला उपन्यास लिखना शुरू किया।''[१३२]

इस कहानी को बहुत लोग मन का भ्रम या कथाकार की गप्प कह सकते हैं। स्वामी सोमेश्वरानंद ने पूर्वोल्लिखित साक्षात्कार में इसी प्रकार की शंका उठाई थी। उसके उत्तर में रेणु जी ने जो कुछ कहा था, उसे सुनकर यही प्रतीत होगा कि ये एक अभिनव गिरीशचन्द्र हैं, वह प्रसंग यहाँ उद्धृत किया जाता है –

सोमेश्वरानन्द – अच्छा, आप तो किसी समय ठाकुर देवता पर विश्वास नहीं करते थे !

रेणु जी – आज भी क्या करना चाहता हूँ? लेकिन उनको अस्वीकार कैसे करूँगा? प्रेम को क्या अस्वीकार किया जा सकता है?''

सोमेश्वरानन्द – प्रेम?

रेणु जी – रामकृष्ण की तस्वीर को देख रहे हैं न ! प्रेम–प्रेम की सघन मूर्ति। आपलोग उनको अवतार कहें, महापुरुष कहें, जो चाहे कहें, मेरे लिए तो वे प्रेम के जीवन्त सम्राट हैं, इस तस्वीर की ओर जब निहारता हूँ, लगता है, वे चिरकाल से मेरे अपने आत्मीय हैं। लगता है, वे केवल मुझी को प्रेम करते हैं (रेणु जी कुछ देर आवेग के मारे चुप रहे) ! सोचता हूँ, वह सब मन का भ्रम है ! लेकिन जब भी इस तस्वीर को देखता हूँ, लगता है, वे कितने अपने हैं! इन दो आँखों से केवल प्रेम झरता रहता है।

सोमेश्वरानन्द – आप कलाकार हैं, आपकी यह चिन्ता आवेग तो नहीं?

रेणु जी – (हँसकर) जानते हैं? कितने दिन उनकी तस्वीर की ओर देखते हुए कहा है – ठाकुर, तुम मुझको इतना प्रेम क्यों करते हो? मैं तो शराब पीता हूँ, जो मन में आता है, करता हूँ। लोग जिसको पाप कहते हैं, वह भी किया है। तब फिर क्यों मुझको प्यार करते हो? वे केवल ही-ही हँसते रहे, और बोले – साला, कितना पाप करेगा? कर न ! कितनी शराब पिएगा? पी न ! फिर भी तुझको नहीं छोड़ूँगा। तू मेरा है। आ, मेरी गोद में बैठकर शराब पी।

सोमेश्वरानन्द – यह हेलुसिनेशन भी तो हो सकता है !

रेणु जी – (उत्तेजित होकर) हेलुसिनेशन? क्या कह रहे हैं आप? मैंने उन्हें देखा है। जैसे आपको देख रहा हूँ, ठीक उसी तरह। (शान्त होकर) जानते हैं, मेरे जीवन में एक समय आया था – टी. बी. हो गई थी, बिस्तर पकड़ लिया था, डॉक्टरों तक ने जवाब दे दिया था। आत्मीय बन्धु-बान्धव पास नहीं आते थे। अस्पताल में एक दिन देखा – एक आदमी, नंगे बदन, धोती पहने हुए, चेहरे पर दाढ़ी। मेरे पास आकर बोला, ''दुर् साला, इतनी चिन्ता क्यों करता है? तू मरेगा नहीं ; बच जाएगा। मैंने कहा, ''डॉक्टर लोग तो कहते हैं, मर जाऊँगा। उस आदमी ने कहा, मूर्ख डॉक्टर क्या जाने? मैं कहता हूँ तू बच जाएगा। जानते हैं, महाशय, सचमुच मैं बच गया। और यह आदमी कौन था, जानते हैं – हमारे रामकृष्ण।''[१३३]

१९५१ ई. की बीमारी के समय अस्पताल में इस दर्शन और श्रीरामकृष्ण के संस्पर्श के बाद जीवन के द्वन्द्व और असहिष्णुता के समाधान के क्रम में विवेक के दंशन को झेलते हुए दुख के पार जाने का उपाय ढूँढ़ते हुए रेणु जी १९६० ई. में श्रीरामकृष्ण के द्वार पर पहुँचे। इसके बाद जीवन में एक नई धारा प्रवाहित हुई। श्रीरामकृष्ण का प्रेम उन्हें श्रीरामकृष्ण भावधारा के अनुयायी साधु-महात्माओं के बीच प्राप्त हुआ। साधु-महात्माओं के संग में नित्य कुछ समय बिताना, आश्रम में अनेक अनुष्ठानों में योगदान करना उनकी दिनचर्या हो गई। उन्होंने १९६४ ई. में रामकृष्ण संघ के अध्यक्ष स्वामी माधवानन्द जी से दीक्षा प्राप्त करके

श्रीरामकृष्ण के आध्यात्मिक परिवार में प्रवेश किया। नियमित साधना, रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य का अध्ययन और साथ ही नई-नई साहित्य कृतियों में रामकृष्ण–विवेकानन्द भावधारा को प्रतिफलित करते हुए पाठकों के बीच उक्त भावधारा के प्रसार में संलग्न हो गए।

नास्तिक, असंयत, राजनीति को समर्पित जीवनवाले रेणु जी मार्क्सवाद के आलोक में धर्म को अफीम का नशा कहा करते थे। कहते थे, ''विवेकानन्द उनके (श्रीरामकृष्ण के) शिष्य हैं। विवेकानन्द ने क्या-क्या कहा, क्या-क्या किया, वह सब जाने बिना ही मेरे मन में विवेकानन्द के बारे में एक बैरी भाव था।''[१३४] इसके बाद उन्हीं रेणु जी ने विवेकानन्द के बारे में उनकी राय पूछने पर कहा, ''स्वामीजी, अरे बाबा ! एक हिमालय पहाड़ हैं ! बाघ का बच्चा हैं! Swamiji was far greater than all those leaders (गाँधीजी, जयप्रकाश नारायण आदि)। उन्होंने हमें हमारी आत्मसम्मान की खोई हुई भावना प्रदान की। पहले जब कहानी लिखता था, तब गाँव के जनसाधारण के दुख-कष्ट की कथा लिखता था। स्वामीजी ने मुझे दिखा दिया, वे मनुष्य नहीं, देवता हैं। आज साहित्य के माध्यम से देवता की पूजा करता हूँ। और सोशलिज्म? Swamiji was the greatest socialist. भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में स्वामीजी के पथ का अवलम्बन करने पर देश की अवस्था और अधिक अच्छी होती !... ठाकुर और स्वामीजी ने मुझे दो चीजें सिखाई हैं। प्रेम और totality of life. मनुष्य को पहले भी प्यार करता था, वह प्रेम और शक्तिशाली हो उठा, जब मैंने उनसे यह सीखा कि सब मनुष्यों के अन्तर में देवत्व निहित है। पहले दुख और विपदा में असहिष्णु हो उठता था; इन दोनों ने मुझे सिखाया है कि ये (दुख आदि) भी जीवन के अंग हैं। अब मैं जय-पराजय, सफलता-असफलता सबको मिलाकर देखता हूँ। इस जीवन दृष्टि ने मुझे साहित्यिक दृष्टि से और आगे बढ़ाया है, सत्य को और निकट से देखना सीखा है।''[१३५] केवल ठाकुर और स्वामीजी ही नहीं, 'यथाग्नेर्दाहिका शक्ति:' श्रीमाँ के बारे में भी उनकी अनुभूति और भी गंभीर है। उसके बारे में जानने की इच्छा व्यक्त करने पर वे हँसकर बोले, ''वह बात कह नहीं पाऊँगा। माँ, मेरी माँ। जतने हृदये देखो आदरिणी श्यामा मा के, मन तुइ देख आर आमि देखि, आर जेनो केउ ना देखे।''[१३६]

नास्तिक फणीश्वरनाथ के जीवन में श्रीरामकृष्ण का आकर्षण व्यर्थ नहीं हुआ। उपक्रम और उपसंहार को मिलाकर शास्त्रार्थ-विचार की एक रीति है। उपक्रम में, प्रारम्भ में हमने देखा फणीश्वरनाथ के जीवन में श्रीरामकृष्ण का प्रवेश, रूपान्तरण। उपसंहार में, अन्त में हम देखते हैं – फणीश्वरनाथ श्रीरामकृष्णमय हो गए हैं। १९७६ ई. के अक्तूबर महीने में उन्होंने कहा – ''मुझे कैन्सर हो गया है।... ठाकुर को कैन्सर हुआ था, मुझे भी होगा।'' डॉक्टरों ने सोचा कि यह पेप्टिक अल्सर है। ऑपरेशन की बात पर उन्होंने कहा, ''ऑपरेशन करते ही मैं चला जाऊँगा, समाधि हो जाएगी।''[१३७]

डॉक्टरों ने पेट खोला, तो देखा – कैन्सर पूरी तरह फैल गया था। इसलिए पेट बंद कर दिया। १९ दिन बाद शरीर चला गया।

कृत्तिवास पत्रिका में लिखित प्रत्यक्षदर्शी रवीन्द्र भारती के वर्णन से पता चलता है कि अन्त समय में भी फणीश्वरनाथ रामकृष्णमय ही रहे। उन्होंने लिखा है, ''२४ तारीख को सुबह आठ बजे जाकर देखा कि ऑपरेशन की तैयारी है। सिर के पास से रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द की तस्वीर निकालकर माथे से लगा रहे हैं। उसके बाद सीने पर। स्ट्रेचर पर आकर वे सो गए। हाथ जोड़कर बोले, इस बार मैं जा रहा हूँ।''[१३८]

उपक्रम-उपसंहार मिलाकर हमने देखा कि फणीश्वरनाथ को श्रीरामकृष्ण ने अपनी ओर खींचा था। श्रीरामकृष्ण के इस आकर्षण की वे उपेक्षा नहीं कर सके थे। इसके फलस्वरूप मनुष्य फणीश्वरनाथ को देवत्व प्राप्त हो गया। श्रीरामकृष्ण के अप्रत्यक्ष संस्पर्श से एक जीवन धन्य हो गया, जिसका नाम है फणीश्वरनाथ रेणु। ○○○ **(समाप्त)**

सन्दर्भ सूत्र – १२६. श्रीरामकृष्ण के येरूप देखियाछि, पृ. ३४६ **१२७.** वही, पृ. ३४५ **१२८.** वही, पृ. ३४६ **१२९.** रामकृष्ण-विवेकानन्द जीवनालोके, पृ. ७१-७२ **१३०.** विवेकानन्द के समकालीन भारतवर्ष, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ५११ **१३१.** वही, पृ. ५१४ **१३२.** फणीश्वरनाथ रेणु : चुनी हुई रचनाएँ, भाग-३, पृ. ६२-६३-६४ **१३३.** विवेकानन्द ओ समकालीन भारतवर्ष, खंड-७, पृ. ५१२-१३ **१३४.** रेणु की चुनी हुई रचनाएँ, भाग-३, पृ. **१३५.** विवेकानन्द ओ समकालीन भारतवर्ष, खंड-७, पृ. ५१३-१४ **१३६.** वही, पृ. ५१३ **१३७.** वही पृ. ५१९ **१३८.** वही, पृ. ५१९

रानी लक्ष्मीबाई की हमशक्ल झलकारी बाई

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – 'हे नर-नारियो ! उठो, आत्मा के सम्बन्ध में जाग्रत होओ, सत्य में विश्वास करने का साहस करो। संसार को कोई सौ साहसी नर-नारियों की आवश्यकता है। अपने में वह साहस लाओ ...जो जीवन में निहित सत्य को दिखा सके, जो मृत्यु से न डरे, प्रत्युत उसका स्वागत करे।' ऐसा ही साहस स्वामी विवेकानन्द अपने देशवासियों में देखना चाहते थे।

आइए जानते हैं, स्वामी विवेकानन्द द्वारा परिकल्पित साहसी वीरांगना के बारे में।

वीरांगना झलकारी बाई

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की पंक्तियों में.....

जाकर रण में ललकारी थी,
वह तो झाँसी की झलकारी थी।
गोरों से लड़ना सिखा गई,
है इतिहास में झलक रही,
वह भारत की ही नारी थी।

झाँसी के पास के भोजला गाँव में एक निर्धन कोली परिवार में २२ नवम्बर, १८३० में झलकारी बाई का जन्म हुआ था। उनके पिता का नाम सदोवर सिंह और माता जमुना देवी थीं। अल्प आयु में ही उनकी माँ का निधन हो गया। उसके बाद पिता ने उन्हें एक लड़के की तरह पाला। घुड़सवारी और हथियारों का प्रयोग करने में उन्होंने प्रशिक्षण प्राप्त किया। सामाजिक परिस्थितियों के कारण उन्हें कोई औपचारिक शिक्षा तो प्राप्त नहीं हुई, लेकिन एक अच्छे योद्धा के रूप में उन्होंने स्वयं को विकसित किया था।

झलकारी और रानी लक्ष्मीबाई; दोनों के रूप में समानता थी। एक बार गौरी पूजा के अवसर पर झलकारी महारानी झाँसी के किले में गयीं, वहाँ रानी लक्ष्मीबाई उन्हें देखकर अवाक् रह गयीं, क्योंकि झलकारी रानी लक्ष्मीबाई के समान दिखती थीं। झलकारी की बहादुरी के बारे में सुनकर रानी लक्ष्मीबाई बहुत प्रभावित हुईं। रानी ने उन्हें दुर्गा सेना में शामिल करने का निर्देश दिया। जब झाँसी की सेना को किसी भी ब्रिटिश का सामना करने के लिए मजबूत बनाया जा रहा था, उस समय झलकारी ने बंदूक चलाना, तोप चलाना और तलवारबाजी का प्रशिक्षण लिया।

उपनिषदों में निर्भय होने की सीख दी गई है। भारतीय दर्शन में निर्भयता की धारणा अजर-अमर अविनाशी आत्मतत्त्व के सिद्धान्त पर प्रतिपादित की गई है। यह सिद्धान्त हमें अद्भुत साहस प्रदान करता है। वही समाज और राष्ट्रदेवता की सेवा के लिए अपने जीवन को समर्पित कर सकता है, जो शरीर को तुच्छ मानता है। वही त्याग कर सकता है। यही त्याग तथा राष्ट्रभक्ति की भावना हम झलकारी बाई के जीवन में देखते हैं।

झलकारी बचपन से ही बहुत साहसी थीं। एक बार जंगल में एक तेंदुए से उनका सामना हुआ। झलकारी ने अपनी कुल्हाड़ी से उस तेंदुआ को मार डाला। एक बार डकैतों ने गाँव के एक व्यवसायी पर हमला किया। तब

झलकारी ने अपनी बहादुरी से उन्हें पीछे हटने को मजबूर कर दिया था। उनकी इस बहादुरी से प्रसन्न होकर गाँववालों ने रानी लक्ष्मीबाई की सेना के बहादुर सैनिक पूरन कोरी से उनका विवाह करवा दिया।

ब्रिटिशों ने नि:संतान झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के द्वारा गोद लिए हुए पुत्र को उनका उत्तराधिकारी स्वीकार नहीं किया, क्योंकि लार्ड डलहौजी की राज्य हड़पने की नीति के अनुसार वे राज्य को अपने नियंत्रण में लाना चाहते थे। रानी की सारी सेना, उनके सेनानायकों और झाँसी के लोगों ने ब्रिटिश के इस षड्यंत्र के विरोध में रानी का साथ दिया और उन्होंने ब्रिटिशों के विरुद्ध हथियार उठाने का संकल्प लिया। अप्रैल १८५७ में, लक्ष्मीबाई ने किले के भीतर से सेना का नेतृत्व किया और ब्रिटिश द्वारा किये कई हमलों को असफल कर दिया। दूल्हेराव नामक एक सेनानायक ने रानी को धोखा दिया और ब्रिटिश सेना के लिए किले का एक संरक्षित द्वार खोल दिया। जब ब्रिटिश सेना किले पर चढ़ाई करने लगी, तो रानी के सेनापतियों और झलकारी बाई ने उन्हें किला छोड़कर भागने का सुझाव दिया। रानी अपने कुछ विश्वस्त सैनिकों के साथ घोड़े पर बैठकर झाँसी से दूर निकल गईं।

झलकारी बाई के पति किले की रक्षा करते हुए शहीद हो गये। परन्तु झलकारी ने अपने पति की मृत्यु का शोक नहीं मनाया, बल्कि ब्रिटिशों को धोखा देने की एक योजना बनाई। झलकारी बाई झाँसी की रानी की हमशक्ल थीं। झलकारी ने लक्ष्मीबाई की तरह वेष धारण किया और सेना का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया। बाद में वे ब्रिटिश जनरल ह्यूग रोज के शिविर में उससे मिलने पहुँची और वहाँ पहुँचने पर चिल्लाकर कहा कि वह जनरल ह्यूग रोज़ से मिलना चाहती है। रोज और उसके सैनिक प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि झाँसी पर अब उनका अधिकार हो गया है तथा रानी भी उनके अधिकार में है। जनरल ह्यूग रोज उसे रानी ही समझ रहे थे। जनरल ह्यूग रोज ने झलकारी बाई से पूछा – उसके साथ क्या किया जाना चाहिए? झलकारी बाई ने दृढ़ता के साथ कहा – मुझे फाँसी दो। झलकारी के साहस और नेतृत्व क्षमता से बहुत प्रभावित होकर ह्यूग रोज ने उन्हें छोड़ दिया। बुन्देलखण्ड की एक किंवदन्ती है कि झलकारी के इस उत्तर से जनरल ह्यूग रोज दंग रह गया। उसने कहा यदि भारत की एक प्रतिशत महिलायें भी उसके जैसी हो जायें, तो ब्रिटिशों को जल्दी ही भारत छोड़ना होगा।

जनकवि बिहारी लाल हरित ने 'वीरांगना झलकारी' काव्य की रचना में झलकारी की बहादुरी को इस प्रकार पंक्तिबद्ध किया है :

लक्ष्मीबाई का रूप धार, झलकारी खड़ग संवार चली।
वीरांगना निर्भय लश्कर में, शस्त्र अस्त्र तन धार चली।।

इतिहासकारों ने झलकारी बाई के योगदान को बहुत विस्तार से नहीं दिया है, लेकिन आधुनिक लेखकों ने उन्हें गुमनामी से उभारा है। इसके विपरीत कुछ इतिहासकार मानते हैं कि झलकारी युद्ध के दौरान वीरगति को प्राप्त हुई।

देशभक्ति की मूल भावना को जीवन में उतारने के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – बड़े काम करने के लिए तीन बातों की आवश्यकता होती है। पहला है हृदय – अनुभव की शक्ति। वे कहते हैं, 'अतएव, ऐ मेरे भावी सुधारको मेरे देशभक्तो ! तुम हृदयवान बनो। ... यह देशभक्त होने की पहली सीढ़ी है। दूसरी बात है, क्या लोगों की ... सहायता का कोई उपाय सोचा है?... तीसरी बात है, क्या तुम पर्वतकाय विघ्न-बाधाओं को लाँघकर कार्य करने के लिए तैयार हो? यदि सारी दुनिया हाथ में नंगी तलवार लेकर तुम्हारे विरोध में खड़ी हो जाये, ... उसे पूरा करने का साहस करोगे? ...क्या तुममें ऐसी दृढ़ता है?

देशभक्ति के ये तीन सोपान हमारे लिए मननीय हैं। अपनी देशभक्ति को कसौटी पर कसने हेतु ये हमारे लिए प्रकाश स्तम्भ के समान हैं, जो भारत की वीर साहसी नारी – वीरांगना झलकारी बाई के अदम्य साहस, त्याग, बलिदान और निष्ठा के माध्यम से उनके जीवन में प्रतिबिम्बित होती है। वीरांगना झलकारी बाई के प्रति हमारा शत-शत नमन। ○○○

प्राचीन हिन्दू लोग अद्भुत पण्डित थे, मानो जीवित विश्वकोष ! वे कहते थे – 'विद्या यदि पुस्तकों में ही रहे और धन यदि दूसरों के हाथ में रहे, तो कार्य के समय वह विद्या भी विद्या नहीं है और वह धन भी धन नहीं है।'

– स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द और सुभाषचन्द्र : वीर योद्धा

स्वामी सुपर्णानन्द, सचिव,

रामकृष्ण मिशन, इंस्टिट्यूट ऑफ कल्चर, गोलपार्क, कोलकाता

बंगला से अनुवाद – स्वामी उरुक्रमानन्द, ओंकारेश्वर

विवेकानन्द तथा सुभाषचन्द्र के अनेक रूप विद्यमान हैं। इन दोनों के साधारण गुण, वीरत्व और योद्धापन किस तरह प्रकट हुए एवं उनकी गति किस प्रकार की थी, यह विवेच्य, प्रतिपाद्य विषय है। प्रकृति का अर्थ है – स्वभाव अथवा वैशिष्ट्य एवं गति का अर्थ प्रभाव के विस्तारणार्थ में लिया जाना चाहिए। पाठकों के समक्ष ये दोनों चरित्र सुपरिचित हैं ही तथा हमने उनके जीवन और उपदेशों को पढ़ा तथा समझा भी है। यद्यपि इन दोनों महापुरुषों के जीवन से सम्बन्धित बहुत-से अनुसंधान हुये हैं, तथापि हमारी जिज्ञासा अभी भी समाप्त नहीं हुई है। इसका कारण यह है कि संन्यासी को देशप्रेम तथा एक देशप्रेमी की संन्यास-प्रीति, ये दोनों बातें दुर्लभ होती हैं। इसके मूल में भारतीय संस्कृति की सनातन धारा ही है। संन्यासी संसार, समाज, देश को त्यागकर संन्यासी वेश लेकर गिरि अथवा गुहा में निवास करता है। संसारी विषय के सम्बन्ध में संन्यासी लेशमात्र भी आग्रही नहीं होते। इसका कारण यह है कि वे संसार का त्याग करके ही तो इससे बाहर रहा करते हैं। वे लोग संन्यास का अवलम्बन लेकर ही रहते हैं। संन्यासी का युद्ध एवं संघर्ष तो आत्मज्ञान-लाभ के लिए हुआ करता है। समाज-संसार को त्यागकर वे इसी भाव में मग्न रहा करते हैं। उनकी इसी तरह की धारा होती है। इसी प्रकार से ही भारतवर्ष उनका सम्मान करते आ रहा है। दूसरी ओर, संसारी लोग समाज आदि के प्रति विरक्त नहीं हुआ करते हैं एवं संन्यासियों की अभीष्ट वस्तुओं के प्रति उनका आकर्षण भी नहीं रहता है। इसलिये इन दोनों आश्रमों में कहीं कोई मिलन-स्थल दिखाई नहीं देता है। विवेकानन्द का वैशिष्ट्य यहीं पर दिखाई देता है। वे संन्यासियों के लिये एक आकर्षक स्थान इसी संसार में रख गये हैं।

यही उनकी एक अनन्य कीर्ति भी है। इसीलिए उन्हें अपने वीरत्व का प्रकाश करना पड़ा था। घर या बाहर उन्हें सतत् संघर्ष ही करना पड़ा था और असम्भव को सम्भव करना पड़ा था। उनकी यह स्वीकृति सुभाषचन्द्र के जीवन में देखी गयी थी। उन्होंने अपने स्तर में संन्यास को धारण कर देशप्रेम तथा देशभक्ति रूपी एवरेस्ट को हृदय में धारण कर संसार में संघर्ष किया। इसीलिए १२ जनवरी तथा २३ जनवरी के बन्धन को तोड़कर देशवासी इन्हें अपने-अपने हृदयों में धारण करके रखते हैं। हमारे लिए १२ जनवरी तथा २३ जनवरी एक पवित्र दिवस होते हैं। इन दोनों दिवसों पर उत्सव मनाने हेतु किसी को आमन्त्रण देकर बुलाना भी नहीं पड़ता है, जैसे सरस्वती पूजा के अवसर पर होता है।

इस परिप्रेक्ष्य में स्वामी विवेकानन्द किन अर्थों में संन्यासी थे, योद्धा थे अथवा योद्धा-सन्त थे, इन सब विषयों की चर्चा आरम्भ करते हैं। इसमें भी दो प्रकार की बातें हैं। सनातन हिन्दू धर्म के जिस ज्ञान को श्रीरामकृष्ण धरोहर-स्वरूप रख गये थे, उसी का विश्व में प्रचार-प्रसार करने की चेष्टा की

थी स्वामी विवेकानन्द ने। यही उनका मिशनरी कार्य था और इसी के लिए उनका आविर्भाव भी हुआ था। इसके पूर्व तक अद्वैत तत्त्व का प्रयोग कभी नहीं हो पाया था। अद्वैत तत्त्व सर्वश्रेष्ठ होते हुए भी व्याख्या की भूल के कारण एवं प्रयोग के अभाव में बड़े-बड़े मनीषीगण ने इस तत्त्व को भ्रान्त-दर्शन अथवा जीवन-विमुख कहा था। इस तरह जनमानस में एक भ्रान्त धारणा की सृष्टि की थी। इसलिए इन भ्रान्त धारणाओं को दूर करने हेतु एक वेदान्ती संन्यासी को बहुत संघर्ष करना पड़ा था। इसीलिये विवेकानन्द एक वेदान्ती संन्यासी भी थे एवं एक योद्धा भी।

स्वामीजी की इन दो भावनाओं से सुभाषचन्द्र बहुत प्रभावित हुए थे तथा उन्होंने स्वामी विवेकानन्द की सामाजिक स्तर की चिन्तनधारा को सादर तथा आनन्दपूर्वक ग्रहण किया था। समाज-संसार मानो एक स्थिर काले पहाड़ के सदृश था, दारिद्र्य, लांछना ये सब नित्यप्राप्त ही थे। हमारे तत्कालीन शासकों का इस ओर कुछ ध्यान ही नहीं जाता था। उनका मुख्य काम था जनता से राजस्व ग्रहण करना तथा जनमानस का धर्म परिवर्तन कर अपने धर्म में विलय करना। इसीलिए स्वामीजी की भावना के केन्द्र में था – राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त करना। भारतवासियों का प्रथम कार्य था विदेशी शासक को इस देश से निष्कासित करना। हमारी देशमाता की छाती पर बैठकर ये डकैत उसका रक्तपान कर रहे थे तथा सन्तान होकर उन लोगों को यह सब देखना पड़ रहा था। इससे बड़ी लज्जा की बात भला और कुछ हो सकती है। स्वामीजी की इस यन्त्रणा के सार्थक उत्तराधिकारी, उनकी स्वप्न-सम्भव सन्तान थे सुभाषचन्द्र। सुभाषचन्द्र का आध्यात्मिक जीवन के प्रति विशेष रुझान था। उन्होंने स्वयं ही ऐसा कहा था कि यदि विवेकानन्द जीवित होते, तो वे मेरे गुरुदेव होते। हमलोग यह सहज ही कल्पना कर सकते हैं कि उनके गुरुदेव उन्हें किस मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित करते! देशभक्ति की बाढ़ मानो उनके हृदय में सदा ही प्रवाहमान रहा करती थी, इसलिए ऐहिक जीवन को उन्होंने त्याग दिया था एवं स्वयं की मुक्ति की भी उन्हें चिन्ता नहीं थी। बन्धु दिलीपकुमार राय के साथ वे श्रीअरविन्द घोष के पास भी गये थे, परन्तु वे लौट आये थे। इस भारतवर्ष में स्वामी विवेकानन्द के अतिरिक्त सुभाषचन्द्र का गुरु होना सम्भव न था। उनके मन-प्राण में केवल विवेकानन्द का ही आह्वान था : 'उठो! जागो! जगत् दुख से जलकर राख हो रहा है। ऐसी स्थिति में तुम्हें क्या निद्रा शोभा देती है!' गुरु के पादपद्मों में बैठकर आत्मचिन्तन करने की भावना को स्वामी विवेकानन्द ने पूरी तरह से दूर कर दिया था। एक ओर विश्वविजय करके स्वामीजी ने सन् १८९७ में स्वदेश लौटकर आह्वान किया था, 'जागो वीर ! स्वप्न देखना छोड़ दो।'' और दूसरी ओर, उसी भारतभूमि पर २३ जनवरी को श्री जानकीनाथ बसु तथा प्रभावती देवी के घर में आए थे – विवेकानन्द के भावशिष्य सेनापति सुभाषचन्द्र। इसी समय कविकण्ठ से भी वीर का आह्वान सुना गया – 'जन्म के समय ही देखा भारतभूमि क्षुब्ध है।'' स्वामीजी के अमोघ आह्वान की फलश्रुति ही जननेता सुभाषचन्द्र थे। वे 'सुचिन्तित कर्मप्रवाह, राजनैतिक दर्शन, अतुलनीय देशप्रेम को जगाने के लिये, हमारी आँखों के तारे, भारत के गौरव बनकर आए थे।' हमारे लिए तो उनकी महिमामय उपस्थिति महाकाल के ललाट पर एक अग्निमय चिरन्तन वस्तु है – जिसकी मृत्यु नहीं, वे हैं एक नवीन ईश्वरपुरुष, जिनका पवित्र आविर्भाव सर्वकाल में पूरे देश के नवयुवकों के लिये एक स्वप्न है। गूढ़ अर्थ से देखा जाए, तो वे विवेकानन्द की मानस सन्तान ही थे। राजनैतिक जीवन में कुछ काल के लिए उनके गुरु थे श्री चितरंजन दास, जिन्हें हम देशबन्धु कहते हैं। रवीन्द्रनाथ के लिए सुभाषचन्द्र एक देशनायक थे। विवेकानन्द के गुरुभाई स्वामी ब्रह्मानन्द ने सुभाषचन्द्र के जीवन का पथ प्रदर्शन किया था। इन त्रिकालज्ञ ऋषि के निर्देश पर ही सुभाषचन्द्र ने गृहत्याग किया था। यह गृहत्याग संन्यास हेतु नहीं, अपितु देशहित में किया गया था। समस्त सुखों का त्याग करके, स्वार्थत्याग कर तथा मृत्यु का आलिंगन करना यह एक प्रकृत योद्धा के समकक्ष ही हुआ था, जो इस देश के इतिहास में बड़ा दुर्लभ है। स्वामीजी ने कहा था : Worship death ! All is in vain yet this is not the cowards love of death. It is the welcome of the strong man who has sounded everything to its depths and knows that there is no alternative. (Complete works of Swami Vivekananda, Advaita Ashrama, Kolkata, Vol.8)

(मृत्यु की उपासना करो, बाकी सब चेष्टा ही वृथा है। यही अन्तिम उपदेश है। किन्तु यह एक कापुरुष या दुर्बल व्यक्ति का मृत्युवरण नहीं है या आत्महत्या भी नहीं है। यह है एक शक्तिमान पुरुष का मृत्यु का वरण करना। जिन्होंने अपने अन्तरतम प्रदेश को खोजने के उपरान्त यह देखा था कि इसके अलावा और कोई सत्य ही नहीं है।)

स्वामीजी को प्रेम करके इस प्रकार एक कठिन संकटमय पथ पर अग्रसर हो मृत्यु का भला कौन आलिंगन कर सकता है ! हम अब तक बहुत भावविभोर हो विचार कर रहे थे। आइये, लौट चलते हैं स्वामीजी की घर-बाहर वाली युद्ध की कहानी को कहने हेतु। उसके बाद ही हम देखेंगे, नेताजी सुभाषचन्द्र का एक अन्य अन्दर और बाहर का सुसज्जित युद्ध।

स्वामीजी का योद्धारूप

अन्दर का रूप : हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज में संस्कार का प्रयोजन है, ऐसा विचार करके ही वे ब्राह्मसमाज के सदस्य बने थे। किन्तु श्रीरामकृष्ण के संस्पर्श में आकर उन्होंने यह समझा कि संसार की आवश्यकता नहीं है, बल्कि प्रयोजन अपने भीतर ज्ञान के ऐश्वर्य और ज्ञानार्जन करने की है, आवश्यकता है भगवत्शक्ति के जागरण की। यह कार्य सम्पन्न होने पर मनुष्य समझ सकेगा कि कौन-सा सुसंस्कार है और कौन-सा कुसंस्कार। वैष्णव, शाक्त तथा शैव हिन्दू धर्म की ये सब शाखाएँ या सम्प्रदाय सत्यधर्म का ही प्रचार कर रहे हैं। उन्हें निरर्थक मानकर गाली-गलौज करना उन पर अन्याय करना ही है। श्रीरामकृष्ण के जीवन में इस सत्य की उपलब्धि इतने आन्तरिक भाव से हुई थी कि सुभाष को यह समझ में आ गया था कि अन्य किसी भी महापुरुष ने ऐसी अपूर्व उपलब्धि प्राप्त नहीं की। इसीलिए सुभाष कहा करते थे कि तुम लोगों को कुछ भी छोड़ने की आवश्यकता नहीं है, जो कुछ भी तुम्हारे पास है, उसमें ही गौरव बोध किया करो और यह जानो कि अन्य लोगों में भी सत्य विद्यमान है, इसलिए उसको भी स्वीकार करो। समस्त धर्ममत को अद्वैत में समन्वित करने का गुरुभार श्रीरामकृष्ण ने स्वामी विवेकानन्द को सौंपा था। स्वामीजी ने भी इस महान कार्य हेतु अपना जीवन उत्सर्ग किया था। स्वामीजी ने कहा था कि मेरे जीवन में तीन व्रत हैं – १. विमूर्त अद्वैत तत्त्व को सजीव और काव्यमय बना देना। २. पुराण के असम्भव से एवं जटिल तत्त्वों में से एक सुनिर्दिष्ट नैतिक आदर्श तैयार करना। ३. विभ्रान्तिपूर्ण योगतत्त्व से एक वैज्ञानिक और उपयोगी मनस्तत्त्व को खोज निकालना। **(स्वामी विवेकानन्द पत्रावली, उद्बोधन कार्यालय, पृ. ४३७-३८)** स्वामीजी ने शिवभाव से जीवसेवा का जो आदर्श अपने गुरुदेव के श्रीमुख से सुना था, उसे उन्होंने कार्यरूप में परिणत किया था। उसे वे इतना बोधगम्य बना देना चाहते थे, जिसे एक छोटा शिशु भी सरलता से समझ जाए। इस क्षेत्र में उन्हें प्राचीन पंथी तथा नवीन पंथियों से युद्ध ही करना पड़ा था (ब्राह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, थियासॉफी के साथ आधुनिक वैष्णव और अद्वैतवादियों के साथ)। हिन्दू धर्म किसी भी काल में मिशनरी था ही नहीं, इसीलिए मिशनरियों का तमगा पहनाकर रामकृष्ण भक्तगणों का विरोध भी उन्हें सहन करना पड़ा था। इस विषय में यह स्मरणीय विषय है कि स्वामीजी ने समुद्र पार किया था, इसीलिए दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर में उन्हें प्रवेश नहीं करने दिया गया था। परन्तु उन्होंने अपने शिष्यों के साथ मिलकर अकेले ही इस युद्ध का सामना वाराणसी और कनखल में रोगियों की सेवा द्वारा तथा कोलकाता में प्लेग से आक्रान्त लोगों की सेवाकार्यों द्वारा किया था। लोगों ने अवाक् होकर संन्यासियों के इस अदृष्टपूर्व मानवप्रेम को जीवों की सेवा में शिव को देखा था। आज यह बड़े आनन्द का विषय है कि विभिन्न सम्प्रदाय के साधुओं ने इस प्रकार के सेवाकार्यों को अपने-अपने आश्रमों में स्वीकार कर लिया है। स्वामीजी एक ऐसे योद्धा हैं, जिनकी पराजय असम्भव है। इसे कुछ दूसरे प्रकार से कहना हो, तो हम कह सकते हैं कि उनके द्वारा प्रतिष्ठित रामकृष्ण मिशन ने भी इन सेवाकार्यों के प्रकल्पों को करते समय बहुत कठिन परिस्थितियों का सामना करते हुए ही विजय प्राप्त की है। आज देश के हृदय में यह मिशन प्रतिष्ठा पा चुका है। वेदानुयायी ऋषियों का कर्मवाद आज किस तरह का एक पूजा पर्यवसित एक वैदिक कर्मयोग में परिणत हो गया है। वैदिक मुनियों की कर्महीनता आत्मवादपूर्ण तपस्या रत रहने में ही निहित थी। उसे भी स्वामीजी ने सांख्ययोग के साथ मिलाकर ज्ञानी-ध्यानियों को सेवाकार्यों में नियुक्त किया था। इस युद्ध में उनके पास शस्त्र थे – विवेक एवं तीक्ष्ण बुद्धि के साथ-ही-साथ मानव के प्रति एक अप्रतिम प्रेम। योद्धा विवेकानन्द इसीलिये अजेय हैं। निष्कामभाव से दूसरों के लिए परोपकार करना ही कर्मयज्ञ होता है। मात्र अग्नि में घृत की आहुति देना ही यज्ञ नहीं होता। मानव जीवन में चार आश्रम और चार वर्ण होते हैं – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन चार वर्णों के मनुष्यों के लिए वेदविधि के अनुसार ब्रह्मचर्य, गृहस्थ्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास का प्रवर्तन किया गया है। केवल ब्राह्मण को ही संन्यास का अधिकार

था। बुद्धदेव ने वर्णाश्रम के इस बन्धन को तोड़कर सभी के लिये संन्यास धर्म का प्रवर्तन किया था। इसीलिए उन्हें हिन्दू धर्म को छोड़कर एक नवीन धर्म का प्रवर्तन करना पड़ा था। शंकराचार्य ने बुद्धदेव के ऐसे नवीन धर्म को अनाचार ही माना एवं उन्होंने सनातन परम्परा का निर्वहण करते हुए पुन: वर्णाश्रम धर्म का प्रचलन प्रारम्भ किया। इस प्रकार १०-१२ शताब्दी तक चलता रहा। स्वामी विवेकानन्द ने बुद्धदेव के उदार मत का स्वागत किया एवं संन्यास को हिन्दूधर्म के सभी वर्णाश्रमियों के लिए खोल दिया। स्वामीजी का मत है कि वर्ण को गुणों के आधार पर निर्मित होना चाहिए तथा जन्म के आधार पर वर्ण निर्धारित करना उचित नहीं। गीता में भी इसी बात का अनुमोदन किया गया है – **चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। (गीता ४.१३)** स्वामीजी ने बुद्धदेव की श्रमण-संघ की बात को मन में रखकर विदेशियों को भी संन्यास दीक्षा दी थी। आत्मा में नारी-पुरुष का भेद नहीं होता, इस सत्य को स्वामीजी ने स्वीकारा था। इतना ही नहीं, रामकृष्ण मठ का अनुकरण करते हुए वे सारदा मठ की स्थापना भी करना चाहते थे। इसीलिए, उनके प्रयत्न का कोई अन्त नहीं था। इसमें उन्हें अपने लोगों से भी अनेक विरोध का सामना करना पड़ा था। उनके गुरुभाईयों ने भी उनसे प्रश्न किया था कि आपके इस मत को देश भला क्यों स्वीकार करेगा? इस प्रश्न को सुनकर स्वामीजी उत्तेजना से काँपने लगे थे। उस समय स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने उनसे कहा था कि आप उन सबकी बातों पर ध्यान मत दीजिये, देश परवर्ती काल में आपकी बातों को ही मानेगा, क्योंकि देश के समक्ष और कोई उपाय भी नहीं रहेगा। श्रीअरविन्द ने कहा था, इस देश के इतिहास को उन्होंने दोनों हाथों से उठाकर स्थित कर दिया था और इस देश ने भी उन्हें अपने हृदय सिंहासन पर आरूढ़ किया था। श्रीरामकृष्ण ने उनके विषय में कहा था – 'तू तो वीर है।' हमने भी देखा था कि इस वीर को न जाने कितना परिश्रम करना पड़ा था अपने वीरत्व को प्रमाणित करने हेतु। श्रीरामकृष्ण का होकर उन्होंने जगत् कल्याण करने के लिए अपने नये धर्ममत का प्रचार-प्रसार एक योद्धा की भाँति ही किया था। गुरुदेव का धर्मोदेश था – ''जीव पर दया नहीं, उनकी शिवभाव से सेवा करनी चाहिए।''

बाहर का रूप : भारत के बाहर विदेश में जाकर विशेषत: शिकागो में उन्हें सभी धर्ममतों से अकेले ही संघर्ष करना पड़ा था। अन्यान्य धर्म के प्रतिनिधिगण केवल अपने ही धर्म के अस्तित्व को सत्य मानकर अन्य सभी धर्मों को बिल्कुल नगण्य समझते थे। अन्यान्य कतिपय धर्म का यह मानना था कि केवल उनके धर्ममत का अनुसरण करके ही कल्याण होना सम्भव है, इसीलिए दूसरों को अपने धर्ममत में परिवर्तित करना ही उनका कर्तव्य है। परन्तु स्वामीजी का सुर तो उनके गुरुदेव श्रीरामकृष्ण के सुर से बँधा था, जिसमें सर्वधर्म-समन्वय का राग ही सर्वत्र विद्यमान था। उन्होंने निर्भीक होकर ऐसी घोषणा की थी कि हिन्दू धर्म सभी धर्मों का प्रतिपालन कर उन्हें स्वीकार भी करता है तथा दूसरे धर्मों को दुर्बल करके उनका अपमान कदापि नहीं करता। हिन्दू धर्म इस धराधाम पर सभी धर्मों के लिए एक जननीस्वरूपा है। स्वामीजी ने इस बात की भी घोषणा की कि हिन्दू धर्म इस सत्य को मानता है कि सभी जीवों में एक ध्रुव सत्य विद्यमान रहता है, जिसे दिव्यता का नाम दिया जा सकता है और प्रत्येक धर्म भिन्न-भिन्न पथों से चलकर उस दिव्यता को अभिव्यक्त करने का प्रयास कर रहा है। इसीलिए स्वामीजी ने सनातन हिन्दू धर्म का प्रचार किया था। प्रत्येक आत्मा ही अनन्त दैवी शक्तिसम्पन्न होती है, सभी धर्म इस महासत्य को भीतर-ही-भीतर स्वीकार भी करते हैं। यहीं पर एक महान ऐक्य विद्यमान रहता है। 'हममें से कोई पापी नहीं, सभी देवस्वभाव विशिष्ट होते हैं।' इस बात को उन्होंने शक्तिशाली ईसाई देश में उनके अनुयायियों के मध्य अपना सिर गर्व से ऊँचा रखकर ईसाई धर्ममत पाप का सिद्धान्त के विरूद्ध सिंहगर्जन किया था। Paper on Hinduism वक्तृता में उन्होंने कहा था – "The Hindu refuses to call you sinners. Ye. (you) are the children of God, the sharers of immortal bliss, holy and perfect beings,. Ye divinities on earth you are siners It is a sin to call a man so, it is a standing libel on human nature! (CompleteWorks, Vol.1, Page.11 (हिन्दुगण तुम्हें पापी कहना नहीं चाहते। तुम सब ईश्वर की सन्तान हो, अमृत के अधिकारी हो, पवित्र और पूर्ण, इस मर्त्यभूमि के तुम देवता हो और तुम लोगों को पापी! मनुष्य को पापी कहना ही एक महापाप है। मानव के यथार्थ स्वरूप पर लगाया गया मिथ्या कलंक है।) सत्य-प्रतिष्ठा के लिए

वे एकदम निडर हुआ करते थे। इस कारण उन्हें मारने की चेष्टा भी की गई थी। उनके गुरुदेव ने उनकी रक्षा की थी। एक बार चाय के कप में आविर्भूत होकर भी उन्होंने स्वामीजी की रक्षा की थी। विदेश में उनके प्रशंसक भाई-बहन उनकी रक्षा हेतु सदैव सजग रहा करते थे। वे एक 'Prophet of divinity' थे और कभी-भी 'Prophet of sin' न थे। उन्होंने इसी भाव से अपना धर्म प्रचार प्रारम्भ किया, जिसमें सत्य के साथ वे कोई भी समझौता नहीं करते थे। परन्तु आज १२५ वर्षों के उपरान्त भी ईसाइयों के सामने हम उनके पापवाद के विरुद्ध कुछ बोलने का साहस नहीं कर पाते हैं। इसका अर्थ यह है कि स्वामीजी एक प्रकृत योद्धा ही थे। "Mild Hindu" के बीच एक ऐसा योद्धा उत्पन्न होगा, ऐसा विश्वास भी किसी को नहीं हो पाता। उनके ऐसे योद्धारूप ने ही हमें शान्ति, सम्मान, विजय, सौभाग्य, बचे रहने का आनन्द दिया था और प्रदान किया था – नवजीवन एवं नव-जागरण। उन्होंने भारतीयों को जीवन के मूल उद्देश्य से सचेत किया था। इस धरा को ही उन्होंने नवजागरण दिया था। उन्होंने पापवाद को नष्ट करके आत्मचैतन्य की प्रतिष्ठा करने को कहा था, जिसकी नींव होगी साम्य, स्वाधीनता एवं भ्रातृत्व। इसीलिए उन्होंने अपनी आत्मा को जगाने का उद्घोष किया था। उन्होंने हमें इन्द्रिय-वासना का अतिक्रमण कर, अपनी अन्त:चक्षुओं को खोलने, तथा सत्य के साथ साक्षात्कार करने का आह्वान किया था। उन्होंने कहा था, मानव देह के भीतर कुण्डली मारकर अनन्त शक्ति विद्यमान है। वह शक्ति उसके भीतर से निरन्तर प्रसारित होती रहती है। उस शक्ति को जब मानव-देह धारण नहीं कर पाता है, तो वह उस शरीर को त्यागकर अन्य शरीर को धारणा कर लेती है। इसी तरह प्रामिथिउस का बन्धन टूट जाता है। यही मानव का इतिहास, सभ्यता एवं प्रगति का इतिहास है।

सुभाषचन्द्र का योद्धारूप

विवेकानन्द के आदर्श से अनुप्राणित होकर, दुर्दमनीय प्राणशक्ति धारण करके, भारत के हृदय पर स्वाधीनता के योद्धा सुभाषचन्द्र कूद पड़े थे। उनके हृदय में केवल विवेकानन्द का ही वास था। विवेकानन्द का क्रन्दन क्या केवल सुभाषचन्द्र ने अकेले ही सुना था? यह प्रश्न उठता है। देश की यह यन्त्रणा, व्यथा इस तरह से और अन्य किसी ने तो अनुभव नहीं किया था। तथापि उनके सामने एक सुखमय एवं गौरवशाली जीवन उनकी बाट जोह रहा था। स्वामीजी को अपने हृदय में धारणकर सुभाष ने उन सभी सुखों की तिलांजलि दे दी थी। लोग यह भी कह सकते हैं कि उन्होंने आत्मज्ञान प्राप्त करनेवाला पथ भी तो नहीं चुना। स्वामीजी की प्रेरणा से ही वे ऐसे पथ पर अग्रसर हुए थे, जिसके द्वारा देश का तथा सभी का कल्याण साधन निहित था। स्वामीजी के उस स्वप्न को सुभाष ने ही पूरा किया था। स्वामीजी की सब प्रकार की देशविषयक यन्त्रणा के यथार्थ उत्तराधिकारी सुभाषचन्द्र ही थे। अब हम उस बात की चर्चा करेंगे, जिसमें सुभाष ने कैसे घर में तथा बाहर विवेकानन्द के सदृश केवल युद्ध ही किया था।

घर के भीतर सुभाष का रूप : सुभाषचन्द्र सब प्रकार की सामाजिक, मानवीय, राजनैतिक एवं आध्यात्मिक सभी स्तरों पर वैषम्यमूलक विषय पर उन सबका यथार्थ विरोध करने में जरा भी हिचकिचाते नहीं थे। सुभाष स्वयं एक वीर पुरुष थे और उनका विश्वास था कि हमने आज तक अपनी प्राचीन सभ्यता तथा प्राचीन देश की धरोहर को वीर की भाँति ही टिकाए रखा है। भारतीय परम्परा, भारतीय दर्शन, संस्कृति उनके रग-रग में मानो अनुस्यूत हो गयी थी। स्वामीजी का वह देशप्रेम युक्त एक योद्धा भाव तो मानो उनके पूरे व्यक्तित्व में समाहित हो गया था। इसीलिए केवल सुखभोग की लालसा के स्थान पर मातृभूमि को पराधीनता के बन्धन से मुक्त करना ही उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य हो गया था। उस समय नेताजी सुभाषचन्द्र जीवन के उच्च शिखर पर आरूढ़ हुए थे, उसी समय एक दर्दनाक समाचार प्राप्त हुआ था कि वे विमान दुर्घटना में प्राण गवाँ बैठे हैं। उस समय ओटेन साहब ने इस वीर छात्र के विषय में एक कविता लिखी थी – "Did I once suffered, Subhash, at your hand? ... victories won!" शासक वर्ग का होने पर भी ओटेन साहब ने इस वीर-मेधावी छात्र को श्रद्धापूर्वक स्मरण रखा था। इसको समझना भी बहुत अधिक कठिन नहीं है। उन्हें एक वर्ष तक कॉलेज से निर्वासित किया गया था। किन्तु इस कालावधि में उन्होंने स्वयं को एक सैनिक की भाँति तैयार कर लिया था। श्री नृपेन्द्रकुमार चट्टोपाध्याय ने लिखा था, 'सैनिक जिस प्रकार युद्ध में जाने से पहले स्वयं को तैयार करता है, ... सुभाष ने उसी तरह से अपने आपको

शेष भाग पृष्ठ ४४३ पर

सारगाछी की स्मृतियाँ (१२९)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से २०२२ तक अनवरत प्रकाशित हुआ था। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

सेवक – क्यों, गोपाल की माँ?

महाराज – गोपाल की माँ कितने जन्मों से साधना की थी, इसके अलावा निश्चय ही पूर्वजन्मों में उन्हें ब्रह्मज्ञान हुआ था।

ललित महाराज ने तीन प्रकार के साधुओं की कहानी बताई – १. एक घसियारा साधु हुआ। जमींदार ने उसके लिए चार लिट्टी, चार प्याज और चार दाना काली मिर्च भेजा। वह पहले भी कमाकर वही खाता था। राजा का पुत्र भी साधु हुआ। उसके लिए राज-भोग का प्रावधान हुआ। घसियारे के नाराज होने पर जमींदार बोला – तुम्हारे वैराग्य और इसके वैराग्य में कितना अन्तर है ! तुम्हारे पास खुरपी है, जाओ घास काटो और खाओ। इसका कितना अधिक त्याग है !

२. एक वेश्या अपने पुरुष-प्रेमी के साथ डगमगाती हुई जा रही थी। एक बाउल साधु रास्ते में जा रहा था, तभी इसके शरीर में धक्का लग गया। उस पुरुष ने उस बाउल साधु को मार-पीटकर बेहोश कर दिया। इधर उस वेश्या को लेकर सीढ़ी पर चढ़ते समय वह पुरुष प्रेमी असावधानीवश अचानक चक्कर आने से नीचे गिरकर बेहोश हो गया।

उस वेश्या ने आकर उस बाउल साधु को इस बात की सूचना दी। साधु ने कहा – तुम्हारा शरीर मेरे द्वारा स्पर्श करने के कारण तुम्हारे मालिक ने मुझे मारा है और मेरे शरीर का स्पर्श करने के कारण मेरे मालिक ने उसको मारा है। तो, यह तो मालिक लोगों का आपस का काम है, मैं क्या जानूँ !

३. एक साधु डेढ़ दिन से मार्ग में बिना खाए-पीए चल रहा था। पास के एक खेत में खीरा देखकर एक खीरा तोड़ते ही किसान ने उसे खूब मारा। साधु ने सोचा सचमुच इसमें मेरा ही दोष है। दस वर्ष बाद वह साधु ध्यान में बैठा था, तभी अचानक उसके मन में क्रोध आया। वह सोच रहा था कि केवल एक खीरे के लिए मुझे मारा था। मिलने पर उसकी हत्या करके फेंक देता।

महाराज – यह सब कहानी ठीक तरह से नहीं कही गई है – व्यावहारिक नहीं है। एक व्यक्ति केवल ज्ञान-विचार कर रहा है। इससे पांडित्य-प्रदर्शन और शुष्क तर्क विचार आ जाता है।

सहन बुद्धि नहीं रहती। भक्ति को सामने रखकर नहीं चलने पर ज्ञान, योग, कर्म कोई भी सफल नहीं होता।

प्रेमेशानन्द महाराज द्वारा लिखित आत्मविकास पुस्तक के नवीन अलंकरण का इतिहास उनके द्वारा लिखित दिनांक १२-०४-१९६५ के निम्नलिखित पत्र में मिलता है –

श्रीरामकृष्ण :

प्रिय विष्णु,

वाराणसी

१२-४-१९६५

श्रीमान अब्जजानन्द ने बड़े प्रयत्नपूर्वक 'आत्मविकास' के दोनों खण्ड प्रकाशित किए हैं। नया मुद्रण मेरे विचार से अति उत्तम है। उसमें अनेक नए आवश्यक अंश जोड़े गए हैं। तुम अपनी आवश्यकतानुसार डाक द्वारा अथवा किसी के हाथ से वांछित संख्या में इसकी प्रतियाँ ले सकते हो। प्रथम खंड का मूल्य ४० पैसे और द्वितीय खंड का मूल्य ५० पैसे है।

मैंने तुमसे तो कहा ही है कि इसे सर्वप्रथम शिक्षकों को अच्छी तरह समझना चाहिए और छात्रों की परीक्षा की पाठ्य वस्तु नहीं बनाकर इसे शिक्षा की विषयवस्तु बनाना होगा। आशा है तुम मेरे इस अनुरोध का पालन करोगे। पुस्तक की दो प्रतियाँ बुक पोस्ट से भेज रहा हूँ। अपना कुशल-समाचार

देना। मैं तुम्हें अपनी स्नेहिल शुभकामना दे रहा हूँ।

इति

शुभाकांक्षी

प्रेमेशानन्द

२१-०४-१९६५

श्रीश्रीमाँ की जीवनी के बारे में बात हो रही है।

महाराज – अक्षय चैतन्य की पुस्तक प्रथम श्रेणी की है। उसकी पुस्तक में केवल माँ का ही प्रचार है, अपना कोई प्रचार नहीं है। भाषा कैसी प्रांजल है। वह तो भक्त है न।

कंठस्वर कैसा मधुर है। सिलहट में एक जगह उत्सव था। मैं गया था। उसने एक गाना गाया, ब्राह्म समाज के उत्सव का गाना। तुम लोग बीच-बीच में इस पुस्तक को पढ़ो। अभी वह गाना याद नहीं आ रहा है। अद्‌भुत ढंग से गाया था। मैंने कहा – क्यों रे, यह आदमी तो रसिक है। तुमने तो उसे देखा है। तुमने ही तो बताया था कि मेरा दरवाजा बंद देखकर जाते समय चौखट पर मस्तक से स्पर्श करके प्रणाम करके जाता था।

प्रात:काल लगभग ७-१५ बजे महाराज का दर्शन करने एक संन्यासी आए। सभी लोग उन्हें प्रियकाठी महाराज कहकर पुकारते थे। एक व्यक्ति उन्हें सहारा देकर ले आए हैं। आँखों से दिखाई नहीं पड़ता, शरीर थर-थर काँपता है, आयु ६७ वर्ष थी। उन्होंने बैठकर हाथों से पैरों को खोजकर महाराज के चरणों से मस्तक लगाकर प्रणाम किया।

प्रियकाठी महाराज – आप तो इतने कष्ट में रहकर भी बहुत आनन्द में हैं। कैसे समय बिताऊँ? बीच-बीच में जप-ध्यान का प्रयास भी करता हूँ, किन्तु आनन्द से कहाँ रह पाता हूँ?

महाराज – और क्या करिएगा। अब जैसे ठाकुर रखें, वैसे रहिए। इसके अलावा और क्या करणीय है? ठाकुर तो हैं।

प्रिय महाराज – हाँ, उनके साथ ठाकुर मन्दिर में बैठकर ध्यान किया है – उनके दाहिने ओर बैठकर। यही सब बातें सोचता हूँ, सोचता हूँ कि मैं ठाकुर मंदिर में बैठा हूँ।

महाराज – महापुरुष महाराज क्या ठाकुर से अलग हैं? उनका चिन्तन करने से ही ठाकुर का चिन्तन होने लगेगा।

प्रिय महाराज – एक दिन आकर ढाका के दंगे की बात कहने लगा। सुनकर वे बोले – मेरा सिर ठनक रहा है। मन ही मन मैंने सोचा, इसीलिए तो ! एक दिन साधु के पास गया। जाकर उनका सिरदर्द बढ़ाकर आ गया।

प्रिय महाराज के चले जाने पर महाराज बोले – अच्छे साधु हैं, मुख देखा न !

२२ अप्रैल, १९६५

सुबह भ्रमण करके आने पर महाराज ने मूड़ी का चूरन और छेना खाया। खाने के बाद टेक लगाकर बैठे हैं।

सेवक – जहाँ-जहाँ नेत्र पड़े, वहाँ-वहाँ कृष्ण-स्फुरण हो।

इसका अर्थ क्या सभी वस्तुओं में उसी चैतन्यमय सत्ता का अनुभव करना है, जो देह-मन-बुद्धि से परे सत्ता है? जैसा गोपाल की माँ को हुआ था। क्या आप हर समय इसके सम्बन्ध में सजग रहते हैं?

महाराज – मैंने तुमसे तो कई बात बताया है, मेरी धारणा सुस्पष्ट है। सभी वस्तुओं में और सभी जीवों के भीतर वही अनन्त चित् सत्ता है, उसे मैं स्पष्ट जानता हूँ। किन्तु ध्यान और समाधि शरीर की इस स्थिति में करने में समर्थ नहीं हूँ। मेरे पितामह योगी थे, उनका नाम था विश्वनाथ भट्टाचार्य। मोक्षदा बाबू कहते हैं कि सम्भवत: मैं वही हूँ। पता नहीं। उस वंश की अन्तिम रक्त-बूँद मेरे भीतर थी, इसीलिए ठाकुर के प्रति आकर्षण का अनुभव करता हूँ। इसी से मैं मुक्त अनुभव करता हूँ। कैसे संकट से मुक्त हुआ हूँ। अब और पीछे की बातें सोचने से कोई लाभ नहीं, कोई आवश्यकता नहीं है। अब यहाँ से जा सकने में ही रक्षा है।

सेवक – मुझे भी समय-समय पर लगता है कि मुक्ति पाने से ही बच सकता हूँ। बीच-बीच में हिसाब लगाता हूँ – मैं तो कुछ भी नहीं चाहता। किन्तु पूर्व संस्कारवश भोग की वस्तुएँ सामने आने पर भोग के संस्कार जाग उठते

हैं। मुक्ति की तो कोई धारणा नहीं है। बड़ा आग्रह रहता है काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया, मात्सर्यहीन भाव से ठाकुर की तरह लोगों के पास रहूँ, यहीं तक। मुक्ति की अन्य कोई धारणा नहीं है।

महाराज – क्यों, मुक्ति का अर्थ है, अपने में डूबे रहना, क्या इसे नहीं समझते?

सेवक – आत्मसंस्थं अवस्था को आभास से समझता हूँ, किन्तु कुछ अनुभव नहीं करता। जैसे दो वर्ष का बालक अपने मन से नाचकर-खेलकर भ्रमण करता है। हरि-हरि बोलो। जय रामकृष्ण बोलो। भोजन करने जाता हूँ, ऐसा कहकर बस भोजन करने चला ही गया।

२२ अप्रैल, १९६५

सुबह बहुत गर्मी लग रही है। सुबह भ्रमण के समय (५-१५ से ६-१५ के बीच) महाराज को ठंडक लगती है। इसीलिए भ्रमण कर लौटने पर कम्बल छोड़ना नहीं चाहते हैं। सुनील महाराज ने पूछा, 'आपको गर्मी नहीं लगती है?''

महाराज – नहीं।

(इसके बाद बातें करते हुए धीरे-धीरे इस कम्बल को महाराज के शरीर से एकदम हटा दिया गया, तो वे कुछ नहीं बोले।)

सेवक – क्या कुछ पता चला?

महाराज – हाँ, इसीलिए तो। कम्बल मत हटाओ, ठंड लगेगी।

सेवक – अभी गर्मी अधिक है, ठंड नहीं लगेगी।

दोपहर में महाराज द्वारा बारम्बार आग्रह करने पर गीता के दस अध्यायों के नाम और उनकी श्लोक संख्या एक कागज पर लिखकर उन्हें दिया गया। उसे लेकर वे कैसे व्यस्त हैं। जेब में उसे रख लिए। भ्रमण के समय उसे कंठस्थ करेंगे। बारम्बार पढ़ने का प्रयास और याद करना तथा फिर सेवक के सामने उसका पाठ करना।

३०-०४-१९६५

प्रात:काल पेराम्बुलेटर से भ्रमण करके महाराज अपने कमरे में ६ बजे वापस आए। अब कुछ नाश्ता करेंगे। इसी समय गिरीशानन्द महाराज कमरे में आए और खड़े-खड़े ही उन्होंने पूछा, ''इस कमरे में हैं? टहलकर आ गए हैं क्या?'' तदुपरान्त बातचीत करते हुए कुर्सी पर बैठ गए। उनके बैठते ही महाराज बच्चे के समान बोल पड़े, ''मैं अभी कुछ खाऊँगा। कुछ खाऊँगा।''

गिरीशानन्द महाराज – (हँसते हुए) अच्छा, अच्छा, (हँसते हुए) खाऊँगा। खाऊँगा।

२-०५-१९६५

महाराज प्रात: भ्रमण कर रहे हैं। इसी समय गिरीशानन्द महाराज से भेंट हुई।

महाराज – स्वामीजी त्रिकालज्ञ ऋषि थे। उनके संतुलित योगचतुष्टय को नहीं मानने पर मनुष्य का जीवन प्रस्फुटित नहीं हो सकता, किसी तरह का एकांगी विकास हो जाता है, उलटा-पुलटा बकता जाता है।

सेवक – प्रत्येक मनुष्य के देखते ही क्या आपको उसके भीतर के उसी चैतन्य की धारणा मन में होती है?

महाराज – देखने भर से ही सर्वदा मन में वह धारणा नहीं रहती, किन्तु जीवन भर इसी विषय का चिन्तन करने का प्रयास किया है। इसीलिए प्रत्येक जीवन के अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, इन चार आवरणों में लिपटे हुए चैतन्य को स्पष्टतया समझ सकता हूँ। केवल मनुष्य ही क्यों, पेड़-पौधों में भी ऐसी ही धारणा होती है। हमारे सामने पपीते का यह पेड़ देखो न ! कितना ऊँचा है ! प्रकाश पाने के लिए इसका कैसा प्रयास है ! इसके पीछे तो वही चेतना प्रकाशित हो रही है। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ४४० का शेष भाग

तैयार किया था। एक वर्ष के पश्चात् दार्शनिक, अध्यापक आर्कू हट सुभाषचन्द्र के साथ परिचित हुए थे एवं सुभाषचन्द्र के विषय में पुनर्विचार हुआ था। कोलकाता विश्वविद्यालय के कुलपति सर आशुतोष मुखोपाध्याय ने उन्हें स्कॉटिश चर्च कॉलेज में भर्ती करवाया था। वहाँ पर सैन्य शिक्षा पाने के लिए सुभाष ने अपना नाम लिखाया था। बेलघरिया के मैदान में तम्बू लगाया गया था एवं खाकी पोशाक, हाथ में बन्दूक पकड़े वे अन्धकार में पहरा दे रहे थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि छात्र जीवन से ही उनका सैन्य प्रशिक्षण आरम्भ हो गया था। **(शेष अगले अंक में)**

श्रीरामकृष्ण-गीता (२५)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

ब्राह्मणकुलजन्मानो यद्यपि ब्राह्मणो हि ते।
ततस्तत् ब्राह्मणा तेषां ब्राह्मणकुलजन्मनाम्।।५४।।
सन्त्यरूपंडिताःकेचित् केचित् सूव्र्यान्नपाचकाः।
गणिकासेविनः केचित् केचिद्वा देवपूजकाः।।५५।।

– ब्राह्मण के कुल में जन्म लेने पर यद्यपि सभी ब्राह्मण होते हैं, किन्तु उन ब्राह्मणों में कोई बहुत विद्वान होता है, कोई देव-पूजा करता है, कोई भोजन बनाता है, और कोई वेश्या के घर जाता है।

निकषात्तद् यथा ज्ञेयम् स्वर्णं वा पित्तलं च वा।
भगवत्-सन्निधौ तद्वत् सरलः कपटोऽपि वा।।५६।।

– जैसे कसौटी पत्थर के द्वारा सोना है या पीतल स्पर्श कराते ही ज्ञान जाता है, वैसे ही व्यक्ति सरल है या कपटी है, भगवान के पास इसकी परीक्षा हो जाती है।

मानवो मानवोद्वा च मानवा विहिता द्विधा।
ज्ञेयास्ते मानवोद्धारो भगवद्व्याकुला हि ये।।५७।।

– मनुष्य दो प्रकार के होते हैं। मनुष्य और मानहुँस। जो लोग भगवान के लिये व्याकुल हैं, उन्हें मानहुँस कहते हैं।

कामिनी कांचनासक्ता मत्ताश्च विषयेषु ये।
ते किलाभिहिताः सर्वे सामान्या मानवा इति।। ५८।।

– जो लोग कामिनी-कांचन में आसक्त हैं, विषय में उन्मत्त हैं, वे सब सामान्य मानव हैं।

तेषां जातु न वै बोधो बद्धसंसारिणां नृणाम्।
चैतन्यन्तु भवेन्नेव गुरु दुःखविपत्स्वपि।।५९।।

– बद्ध संसारी लोगों को किसी प्रकार भी सजगता नहीं होती। संसार में विभिन्न प्रकार के दुख कष्ट में भी उन लोगों को चैतन्य नहीं होता।

उष्ट्राय रोचते यद्वत कण्टकतृणभोजनम्।
पतितं रूधिरं धारं भुंजानो न विरज्यते।
कण्टकभोजनाद्वक्त्रात्तथाप्यं क्रमेलकः।।६०।।

– जैसे ऊँट काँटा खाना पसन्द करता है। यद्यपि उसे खाने से उसके मुख से धर-धर रक्त गिरता है, तथापि वह काँटा खाना नहीं छोड़ता।

शोकतापाद् भृशं दग्धाः संसारिणो जनास्तथा।
पुनर्दिनेषु गच्छत्सु यथा पूर्वं तथा परम्।।६१।।

– वैसे ही संसारी लोग भी कितने शोक-ताप – दुख-कष्ट पाते हैं, किन्तु कुछ दिन बाद ही जैसा का तैसा।

नरोऽस्यतुलसी कर्णे नारी दीर्घावगुण्ठिता।
शैवालदलपूर्णानां शीतलं सरसां जलम्।। ६२।।
गूढमनाश्च वाचालः सर्व एतेऽपकारिणः।
एतल्लक्षणयुक्तेभ्यः सदैवावहितो भवेत्।।६३।।

।। ओमिति श्रीरामकृष्णगीतासु जीवावस्था-भेदानां पंचमोऽध्यायः।।

– कान में तुलसी, लम्बी घूँघटवाली नारी, शैवाल से भरा तालाब का शीतल जल, गुप्तचित और वाचाल ये सभी क्षतिकर होते हैं, ऐसे लक्षण जिनमें हों, उन लोगों से सावधान रहना।

।। ओम् इति श्रीरामकृष्णगीता का जीवावस्थाभेद पंचम अध्याय समाप्त।।

साधुसंग मानो चावल का धोया हुआ जल है। किसी को अत्यधिक नशा चढ़ा हो, तो उसे चावल का धोया हुआ पानी पिला देने से नशा उतर जाता है। इसी प्रकार साधुसंग संसार में कामना-वासनारूपी मद पीकर जो मत्त हुए हैं, उनका नशा उतार देता है।

– श्रीरामकृष्ण देव

रामराज्य का स्वरूप (९/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

काव्य से अलग हटकर अगर सरल भाषा में कहें, तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि आप कल्पना करें कि श्रीराम यदि अयोध्या के सिंहासन पर बैठ जाते, तो श्रीभरत को तो इसमें प्रसन्नता ही होती, इसमें रंचमात्र कोई आपत्ति नहीं थी, लेकिन श्रीभरत के व्यक्तित्व का जो पक्ष, भरत के व्यक्तित्व का जो गुण, जो विशेषताएँ आगे चलकर समाज के सामने इन चौदह वर्षों में आईं, वे आतीं क्या? बिल्कुल नहीं आतीं। लोग तो कई बार यह कहा करते हैं कि तुलसीदासजी ने शत्रुघ्न के साथ न्याय नहीं किया। कभी उनको बोलने का अवसर ही नहीं दिया। मैंने कहा, इसमें गोस्वामीजी क्या करते? अगर वे नहीं बोले, तो उनको बोलने का अवसर नहीं दिया, ऐसा कहना, क्या तुलसीदास जी कोई सभापति थे कि वे किसी को बोलने का अवसर दे रहे हैं और किसी को बोलने का अवसर नहीं दे रहे हैं? बल्कि मैं तो यह कहूँगा कि शत्रुघ्नजी की स्थिति जो रामायण में है, तो वही स्थिति भरत की होती, अगर भगवान राम का वनगमन का प्रसंग न आता। बिल्कुल वही होता। क्योंकि उनको तो अपने व्यक्तित्व का सर्वदा गोपन की प्रक्रिया में ही विश्वास है, उनके अन्त:करण में यही विश्वास है। बाल्यावस्था से ही गोस्वामीजी ने यह कह दिया कि भरत का यह आग्रह नहीं है कि वे सदा भगवान राम के समीप रहें, पर लक्ष्मणजी तो बाल्यावस्था से ही राम के साथ हैं, नींद भी लक्ष्मणजी को तब तक नहीं आती थी, जब तक उनको राम के पास सुलाया नहीं जाता था। उसमें अन्तर क्या है? भक्तों ने जहाँ पर चारों भाइयों की बाल-लीला का वर्णन किया है, उसमें कहा जाता है कि कभी लक्ष्मणजी को भगवान राम से अलग सुला दिया गया, तो बस लक्ष्मणजी की आँखें चारों ओर खोज रहीं है, आँसू बह रहा है, तब ध्यान आता था कि इनको तो सुलाने के लिए राम चाहिए। राम के पास सुलाए बिना ये नहीं सोएँगे और श्रीराम के चरणों में पहुँचकर लक्ष्मण को नींद आती थी। पर श्रीभरत को यदि श्रीराम से अलग सुला दिया जाये, तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं होती। उनके आँखों में कोई आँसू नहीं दिखाई देता। यद्यपि जो देखने वाले हैं, वे यदि क्रिया के द्वारा निर्णय करेंगे, तो क्रिया के द्वारा निर्णय करनेवाले को यही तो लगेगा कि श्रीराम से जैसा प्यार लक्ष्मण करते हैं, वैसा भरत नहीं करते। पर दोनों की प्रकृति में अन्तर है। श्रीलक्ष्मणजी श्रीराम को प्रत्यक्ष देखना चाहते हैं और भरतजी तो आँख मूँद लेते हैं, तो उनको राम ही राम दिखाई देते हैं, जिस दूरी का अनुभव लक्ष्मणजी श्रीराम से दूर रहकर शरीर से करते हैं। लक्ष्मण की भूमिका दूसरे प्रकार की है। भरत भावभूमि में निवास करते हैं। जब भरत अलग सुला दिये गये, तो वे मन से भगवान राम का ही चिन्तन करते रहते हैं। इसलिए लोगों के मन पर भरत का यही प्रभाव पड़ा कि भरत श्रीराम से उतना प्रेम नहीं करते हैं, जितना लक्ष्मणजी करते हैं।

आगे चलकर गोस्वामीजी ने कई चित्रण किया। बाल्यावस्था में चारों भाइयों के खेलने का प्रसंग आया। चौगान खेलने के लिये सरयू के किनारे एकत्र हुए। खेल के लिए दो दलों की आवश्यकता है। इसलिये एक दल में कुछ बालक और दूसरे दल में कुछ बालक बँट जाते हैं। लक्ष्मणजी को यदि एक क्षण के लिये भी आशंका हो कि राम के विरोधी दल मे उन्हें रहने के लिये कहा जाएगा, तो उस आशंका को काटने के लिए वे पहले से ही श्रीराम से कह देते हैं कि देखिए, मैं खेलूँगा, तो आपकी ओर से

खेलूँगा, नहीं तो नहीं खेलूँगा। यह उनका निश्चय है। अब श्रीभरत हैं, लोग जब देखते हैं, तो लोगों के मन पर क्या प्रभाव पड़ता है? श्रीभरत ने प्रभु की ओर देखा और नेत्रों से ही श्रीभरत ने प्रभु से यह आदेश माँगा कि आप कहें, तो आपके विरोधी दल का नायक मैं बन जाऊँ। दोनों की प्रकृति में बड़ा अन्तर है। भगवान ने बड़ी प्रसन्नता से भरत को विरोधी दल का नायक बना दिया। अब अयोध्यावासियों ने जब देखा, तो कहा कि लक्ष्मणजी का प्रेम तो बड़ा विलक्षण है। वे तो खेल में भी श्रीराम के विरुद्ध जाने की कल्पना नहीं करते और श्रीभरत की भावना तो इतना निगूढ़ है कि आज के युग में श्रीभरत के भाव को समझना जितना सरल हो गया है, उस युग में श्रीभरत के भाव को समझना उतना ही कठिन था। अन्तर से कभी-कभी विलक्षणता सामने आ जाती है। आजकल ऐसा होता है कि लक्ष्मणजी के सम्बन्ध में प्रश्न उठते हैं और भरतजी की प्रशंसा होती है। पर उस युग में भरत के विषय में बहुधा प्रश्न उठा करते थे और लक्ष्मणजी की प्रशंसा होती थी। यह अन्तर था। लक्ष्मणजी का प्रेम इतना स्पष्ट दिखाई देता है।

श्रीभरत के हृदय के प्रेम को जाननेवाला रामायण में तो एक ही बताया गया है। चित्रकूट में सुनैनाजी ने महाराज जनक से एकान्त में यह कहा कि कुछ प्रस्ताव कौशल्याजी ने भेजा है, आपका क्या विचार है? क्या आप वह प्रस्ताव श्रीराम के सामने रखेंगे? कौशल्याजी ने यह प्रस्ताव भेजा कि भरत स्वभाव से ही संकोची हैं। भरत श्रीराम से यह प्रस्ताव कभी करेंगे ही नहीं कि मुझे साथ ले चलिए और उन्होंने किया भी नहीं, यह भी आप देखते हैं। लक्ष्मणजी रोकने पर भी नहीं माने और श्रीभरत जी ने एक बार भी साथ चलने का आग्रह नहीं किया। कौशल्याजी को ऐसा लगा कि इसमें भरत के प्रति कुछ अन्याय होता है। क्यों? बोले, लक्ष्मण तो अपनी भावना कहकर हठपूर्वक मनवा लेते हैं। पर भरत न तो अपनी भावना प्रगट कर पाते हैं और न तो उनकी इच्छा पूरी होती है। इसलिए कौशल्याजी ने यह सोचा कि यदि राम ने वन जाने का निर्णय कर लिया है, तो यही अच्छा होगा कि लक्ष्मण और शत्रुघ्न को अयोध्या लौटा दिया जाय और भरत को श्रीराम साथ में ले लें, तो कम से कम भरत को यह संतोष मिलेगा कि प्रभु के सामीप्य में रहने का उन्हें अवसर मिला। सुनैनाजी ने कौशल्याजी से यह प्रस्ताव सुना था और एकान्त में उन्होंने महाराज जनक के सामने निवेदन किया। उन्होंने जनकजी से पूछा कि आपकी सम्मति क्या है? गोस्वामीजी ने लिखा कि इस प्रस्ताव को सुनते ही महाराज जनक की आँखें मूँद गईं और एक नई बात हुई। क्या?

मूदे सजल नयन पुलके तन। २/२८७/२

महाराज जनक ने आँखें मूँद लीं और उनकी आँखों में आँसू आ गये। वैसे जनकजी वेदान्ती और ज्ञानी के रूप में प्रसिद्ध हैं। ज्ञानियों की आँखों में आँसू आना सरल नहीं है, लेकिन केवल भरत की स्मृति से ही उनकी आँखों में आँसू आ गये। भरत के प्रेम का स्मरण करके आँखों में आँसू आ गये। सुनैनाजी सामने बैठी हुई हैं और जनकजी क्या कर रहे हैं?

सुजसु सराहन लगे मुदित मन।। २/२८७/२

वे मन ही मन भरतजी की कथा कहने लगे। ऐसा वक्ता, श्रोता सामने बैठा हो और मौन हो, मन ही मन कथा अपने आप को ही, अपने मन को सुना रहा हो। इसका मानो सांकेतिक अर्थ यह था कि भरत वाणी के विषय नहीं हैं, अनुभूति के विषय हैं। उनकी प्रीति को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करना सम्भव नहीं है। उसका प्रेम रस तो अनुभव करने की वस्तु है। वह ठीक भी है।

भरत का प्रेम तो बड़ा दिव्य है ही। इस संसार में भी कई वस्तुएँ इतनी मीठी लगती हैं कि उसके मिठास के अनुभव को शब्दों के द्वारा थोड़े ही बताया जा सकता है। उसके मिठास के रस का जो पान कर रहा है, वही अनुभव कर रहा है। महाराज जनक ने भी भाषण बाद में दिया। अगर कोई व्यक्ति उसे वाणी से परे मानकर रस लेने में निमग्न हो जाये, तो क्या होगा? आप इतने लोग एकत्र हैं और अगर मैं एक वाक्य में कह दूँ कि भरत तो अनिर्वचनीय हैं, तो शायद आप लोग कल से आना ही एकदम बंद कर देंगे। कल से क्या, अभी उठकर चले जाएँगे कि यह सुनने के लिये थोड़े ही आए हैं। वाणी का प्रयोग तो किया ही जाता है। महाराज जनक ने भी किया। लेकिन पहले उन्होंने मौन के द्वारा, आँसुओं के माध्यम से, भरत के प्रेम का अनुभव किया। बोलने चले, तो लगा कि महाराज जनक अपनी प्रशंसा कर रहे हैं। महाराज जनक ने कहा –

धरम राजनय ब्रह्मबिचारू। २/२८७/३

सुनैना, धर्म में, राजनीति में और वेदान्त-विचार में मेरी

बुद्धि ठीक-ठीक काम करती है। तो वक्ता की विशेषता और ज्ञान हो गया। धर्म, राजनीति और वेदान्त के पण्डित हैं। पर बाद में पता चला कि वे अपनी प्रशंसा के लिए ऐसा नहीं कर रहे थे, वे तो अपनी असमर्थता का ज्ञापन करने के लिए कुछ कह रहे थे। उन्होंने कहा –

धरम राजनय ब्रह्मबिचारू।
इहाँ जथामति मोर प्रचारू।। २/२८७/३

बोले, 'सो मति मोरि'। बुद्धि तो मेरी वही है, पर

सो मति मोरि भरत महिमाही।
कहै काह छलि छुअति न छाँही।। २/२८७/४

मेरी बुद्धि से भरत के व्यक्तित्व को छूना तो दूर रहा, व्यक्तित्व की छाया को भी छूना सम्भव नहीं है। देखिए, किसी व्यक्ति का चित्र बनाना हो, तो चित्र बनाना कठिन है, पर अगर कह दिया जाये कि व्यक्ति की छाया का चित्र बना दीजिए, तो छाया में आकृति की सूक्ष्मता दिखाना, तो आवश्यक है नहीं। छाया तो काली है, अगर आप थोड़े से सावधान हों, तो किसी व्यक्ति की छाया को आप सरलता से अंकित कर सकते हैं। पर महाराज श्रीजनक ने कहा कि भरत के व्यक्तित्व का वर्णन तो किया नहीं जा सकता, भरत के व्यक्तित्व की छाया भी अगर छूना चाहें, असम्भव है।

रामायण में उसका एक संकेत है। भरत के व्यक्तित्व को छू पाना सम्भव क्यों नहीं है? रामायण में एक पंक्ति भगवान राम और श्रीभरत के सम्बन्ध में कही गई है। देवता बहुत डरे हुए थे कि कहीं ऐसा न हो कि श्रीभरत चित्रकूट में जायें और भगवान राम को लौटा ले आवें। तब देवगुरु बृहस्पति ने देवताओं को समझाते हुए कहा कि डरो मत। क्यों? महाराज, डरें क्यों नहीं, भरतजी तो श्रीराम को लौटाने जा रहे हैं। बोले – यह तुम लोग समझ रहे हो कि लौटाने जा रहे हैं। तब? बृहस्पतिजी ने बड़ा सुन्दर वाक्य चुना। बृहस्पतिजी ने कहा –

मन थिर करहु देव डरु नाहीं।
भरतहि जानि राम परिछाहीं।। २/२६५/४

भरत तो राम की छाया हैं। इसलिए कोई व्यक्ति यह सोचकर डरे कि कहीं ऐसा न हो कि छाया चल पड़े और उसके पीछे-पीछे व्यक्ति को चलना पड़े, तो यह डर अगर किसी के मस्तिष्क में हो, तो इससे बढ़कर नासमझी की बात और कुछ नहीं है। व्यक्ति चलेगा, तो छाया चलेगी। उसका मूल तात्पर्य क्या है? छाया में क्रिया तो सब दिखाई देती है। छाया चलते हुए भी दिखाई देती है, बैठी हुई भी दिखाई देती है। सब कुछ दिखाई देता है। पर छाया में न अपना मन है, न अपनी बुद्धि है, न अपना चित्त है, न अपना अहंकार है। छाया तो अपने आप को व्यक्तित्व के साथ पूरी तरह से विलीन कर चुकी है। छाया व्यक्तित्व से जुड़ी हुई है और अगर छाया को समझना हो, तो व्यक्ति को समझने की आवश्यकता है। छाया को रोकना है, तो व्यक्ति को रोकना आवश्यक है, छाया को रोकने की आवश्यकता नहीं। बृहस्पतिजी ने कहा, तुम डरो मत, भरत तो राम की छाया बन चुके हैं। पर व्यक्ति और छाया में भी एक अन्तर है। क्या? व्यक्ति में कुछ न कुछ स्वार्थ है, पर छाया में स्वार्थ नहीं है। व्यक्ति को सिर पर टोपी लगानी हो, तो टोपी खरीदकर मँगावेगा तब न सिर पर टोपी लगेगी! पर छाया को? आप अपने सिर पर टोपी लगा लीजिए, तो छाया के सिर अपने आप टोपी लग गई। उसका अभिप्राय है कि श्रीराम के व्यक्तित्व में भरत ने अपने व्यक्तित्व को इतना विलीन कर दिया है, राम की ऐसी छाया बन चुके हैं कि यह सोचना कि भरत ऐसा सोचते हैं, ऐसा करते हैं, यह तो केवल एक तर्क मात्र है। सही अर्थों में जैसे किसी की छाया को पकड़कर रोकना सम्भव नहीं है, ठीक उसी प्रकार महाराज जनक ने कहा कि मैं तो यह समझता हूँ कि भरत के व्यक्तित्व का पूर्ण चित्रण तो सम्भव ही नहीं है। पर यदि मैं भरत की छाया को भी पकड़ना चाहूँ, तो उसकी छाया को भी छूने में मेरी बुद्धि असमर्थ है।

कहै काह छलि छुअति न छाँही।।

फिर लगे गिनाने। **(क्रमशः)**

एक शिष्य का नैराश्यपूर्ण पत्र सुनकर श्रीमाँ ने अत्यन्त गम्भीर स्वर में प्रखरता से कहा, ''अरे, वह कैसे सम्भव है? ठाकुर का नाम क्या साधारण वस्तु है? वह नाम किसी तरह व्यर्थ नहीं होगा। जो ठाकुर की शरण में आये हैं, उन्हें इष्ट-दर्शन अवश्य होगा। यदि और किसी समय न हो, तो मृत्यु के पूर्वक्षण होगा ही।

– श्रीमाँ सारदा देवी

गीतातत्त्व-चिन्तन (१७)

ग्यारहवाँ अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ११वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

ग्यारहवें अध्याय का अन्तिम श्लोक इस अध्याय का सारस्वरूप है। गीता का एक बहुत महत्त्वपूर्ण श्लोक है। यह जो भगवान ने अर्जुन को इतना दर्शन कराया, अपना विराटरूप दिखाया, इस सबका सारा तात्पर्य मानो इस श्लोक में सिमट आता है। अर्जुन ने जब जिज्ञासा की कि हे भगवान! आपका यह रूप जबकि यज्ञ, धन, तप के द्वारा नहीं देखा जा सकता, तो हम क्या उपाय करें कि आपका रूप देख सकें। भगवान ने बताया कि अनन्य भक्ति के द्वारा ही उनका वह रूप दीखता है। अनन्य भक्ति कैसी होती है भगवन? अर्जुन पूछा। तब भगवान कहते हैं –

अनन्य भक्ति-लाभ के उपाय

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।।५५।।

– पाण्डव (हे अर्जुन !) यः मत्कर्मकृत् मत्परमः मद्भक्तः संगवर्जितः (जो मेरे लिए कर्म करता है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित है) सर्वभूतेषु निर्वैरः (सर्वभूतों के प्रति वैरभाव रहित है) सः माम् एति (वही मुझे प्राप्त होता है)।

"हे अर्जुन! जो मेरे लिए कर्म करता है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित है और सर्वभूतों के प्रति वैरभाव रहित है, वही मुझे प्राप्त होता है।"

यह भगवान की पराभक्ति का स्वरूप है। अनन्य भक्ति कैसी होती है, इसको समझाते हुए भगवान यहाँ व्याख्या करते हुए कहते हैं – मत्कर्मकृत् – मेरे लिए ही कर्म करनेवाला; अर्थात् संसार में जितने कर्म हैं, वे सब भगवान के लिए ही किए जाएँ। ऐसा गीता का यह तात्पर्य गीता में बार-बार ध्वनित होता है कि संसार के हमारे सारे कर्म भगवन्निमित्त ही हों। मत्परमः – मुझे छोड़कर जिसका और कोई परम नहीं है। जो भगवान को ही एकमात्र परम, चरम माने। मद्भक्तः सङ्गवर्जितः निर्वैरः सर्वभूतेषु – जो मेरा भक्त है, जो सब प्रकार की आसक्तियों से दूर है, जो सर्वभूतों के प्रति निर्वैर का भाव रखता है। ऐसा जो है, हे पाण्डव ! वही मुझे प्राप्त करता है। यह भगवान की वाणी है। भगवान ने अपना जो विश्वरूप दिखाया, उसका तात्पर्य क्या था? सोचने पर एक ही सारस्वरूप बात समझ में आती है, जिसे अपने जीवन में उतारने का प्रयास करना चाहिए। जो बात भगवान ने अर्जुन से कही थी – **निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्** – इस तत्त्व को भलीभाँति अर्जुन के मन में बैठा देने के लिए भगवान अपना विराटरूप दिखाते हैं। तात्पर्य यह है कि कर्ता केवल भगवान हैं और हम तो निमित्तमात्र हैं। इस भाव की प्रतीति जब हमारे भीतर हो जाती है, तब हम **मत्कर्मकृत्** हो जाते हैं। जो भी कर्म करते हैं, वह भगवान के लिए ही करने लगते हैं। इसका अर्थ है कि ऐसे कर्म करें, जिनसे भगवान के उद्देश्य की पूर्ति होती हो। भगवान का उद्देश्य क्या है? स्वयं भगवान ने ही समझा दिया है कि अवतार लेकर आने का उनका उद्देश्य क्या है? कहते हैं –

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

अवतार के तीन कार्य

भगवान साधुओं की रक्षा करने, सज्जनों का परित्राण करने और दुर्जनों का नाश कर धर्म की स्थापना करने हेतु अवतार लेते हैं। अब यदि कोई कहे कि भगवान ने यह बात अर्जुन से कही, तो अर्जुन तो राजा था। अधर्मियों, दुष्टों का दमन कर सकता था। पर हम कैसे करें? हमारे हाथ में तो कोई अधिकार नहीं है। भगवान चाहते हैं कि साधुओं की रक्षा हो, उनका परित्राण हो, तो यह काम हम कर सकते हैं। साधुता की जो वृत्ति है, सज्जनता की जो वृत्ति है, उसकी रक्षा हम करें, यह तो ठीक है, पर दुर्जनों का विनाश तो राजा ही कर सकता है। मैं किसी को दण्ड देने जाऊँ, तो स्वयं ही दण्ड का भागी बन जाऊँ। तब फिर भगवान के उद्देश्य की पूर्ति कैसे कर सकता हूँ? उनका कार्य कैसे कर सकता हूँ? इसको हमें यहाँ इस प्रकार समझना चाहिए कि हम सज्जनता की वृत्ति का पोषण करें, उसका रक्षण करें अर्थात् उसको प्रश्रय दें। यदि हम सज्जनता की वृत्ति को प्रश्रय देते हैं, उस वृत्ति पर कहीं दबाव पड़ता है और दबाव को हटाने के लिए हम कार्य करते हैं, तो समझ लीजिए हमने सज्जनता का पोषण किया। सज्जनों की हमने रक्षा की। दुर्वृत्ति के विनाश में हम संलग्न रहें। यही व्रत ले लें कि हमारे भीतर जो दुर्वृत्ति है और समाज के भीतर जो दुर्वृत्ति प्रवेश कर जाती है, उसे दूर करने का प्रयास करें। समाज में व्याप्त दुर्वृत्तियों के विरुद्ध सबके साथ मिलकर संघर्ष करें, तो भगवान का यह दूसरा कार्य भी सधता है।

धर्म का अर्थ

भगवान का तीसरा कार्य है – धर्म का संस्थापन। जो धर्म है, जिसको हम यथार्थ धर्म के रूप में जानते हैं, शास्त्र जिसकी चर्चा हमारे समक्ष करते हैं, जो तत्त्व समाज को धारण करते हैं, उसी को हमने धर्म समझा। धार्मिक क्रियानुष्ठान आदि तो मात्र धर्म के पोषक हैं। वे सम्पूर्णत: धर्म नहीं हैं। जिन पर समाज टिका रहता है, जिनसे समाज एकता की डोर में गुँथा रहता है, उन सबको धर्म के नाम से पुकारा गया। इस विषय पर तो हमने पहले भी विस्तृत चर्चा की है कि धर्म क्या है? **धारणात् धर्म इत्याहुः धर्मो धारयति प्रजाः** – अर्थात् धारण करनेवाले तत्त्व को धर्म कहते हैं। जो मनुष्य को धारण करे, समाज का धारण करे। जो तत्त्व समाज को टूटने से, बिखरने से बचाते हैं, जो व्यक्ति को खण्डित होने से बचाते हैं, उन तत्त्वों को हमने धर्म के नाम से पुकारा। तो धर्म के संस्थापन करने का अर्थ यह है कि हम अपने जीवन में इन तत्त्वों को स्थान देकर और सामाजिक स्तर पर एकजुट होकर उसकी स्थापना का प्रयास करें, यही धर्म का संस्थापन करना है। यही है भगवान के कार्य में सहायक होना। भगवान का कहना है कि **मत्कर्मकृत्** ... इन तीनों प्रकारों से सधता है। जो साधुता की वृत्ति है, उसका हम पोषण करें। जो दुर्जनता की वृत्ति है, उसका हम विरोध करें, उसका नाश करें। धर्मसंस्थापन का तीसरा कार्य व्यक्तिगत जीवन में प्रथम, परिवार के स्तर पर द्वितीय और तृतीय समाज के स्तर पर घटित होता है। इसके लिए हम सबसे मिल-जुलकर सतत कार्यरत रहें। ऐसा कार्य जब हम इस भाव के साथ कि प्रभु की शक्ति से शक्तिमान होकर करते हैं - उन्हीं की कृपा से, उन्हीं का बल प्राप्त करके जब हम यह कार्य करते हैं, जिसमें हमारा अहंकार नहीं रहता और हम प्रभु की कीर्ति के लिए, उनकी प्रसन्नता के लिए ही जो कार्य करते हैं, उसी से भगवान का कार्य सधता है। यह है धर्म-संस्थापन का कार्य। **मत्परमः** – जब भगवान को ही हम परम मानते हैं, संसार की अन्य किसी भी वस्तु को परम नहीं मानते, तभी भगवान के भक्त हो जाते हैं। **सङ्गवर्जितः** – जब हम आसक्तियों से छुटकारा पाने का प्रयत्न करते हैं, उसी को सङ्ग अर्थात् आसक्ति को दूर करना कहा गया है। हमारे भीतर यदि आसक्ति बनी रहती है, तो धर्म का पालन ठीक-ठीक नहीं हो पाता। आसक्ति के कारण हम कमजोर हो जाते हैं। आसक्ति हमें दुर्बल बनाती है। हम देखते हैं कि कहीं पर तो हमारी धर्म की भावना बहुत प्रबल होती है और कहीं कमजोर होती है। जहाँ पर हम आसक्त होते हैं, वहाँ सिद्धान्त ठीक-ठीक अपना काम कर नहीं पाते। ऐसा भाव भी हमारे मन में आता है कि यदि एक स्थान पर हमसे सिद्धान्त की रक्षा नहीं हो सकी, तो क्या हुआ? आज समाज की दुर्दशा इसीलिए है कि मनुष्य अपनी आसक्ति के कारण जीवित है। जहाँ पर आसक्ति है, वहाँ पर वह धर्मभाव से या सिद्धान्त से स्थान पाना चाहता है। वह सोचता है कि वह धर्म का भाव सभी जगह प्रकट करेगा, पर एक ही जगह यदि वह अपने धर्मभाव की रक्षा नहीं कर पाया, तो उससे कोई हानि नहीं होगी। यह एक

ही जगह धर्मभाव की रक्षा नहीं कर पाने की बात जो मन में आती है, उसका कारण है आसक्ति। इसीलिए कहा कि आसक्ति से दूर रहें। क्योंकि आसक्ति रहेगी, तो मन दुर्बल रहेगा और पक्षपात होगा। पक्षपात के कारण हम सिद्धान्तों को पूरी तरह अपने जीवन में उतार नहीं पाएँगे।

ईश्वर की ओर बढ़ने का लक्षण : पक्षपात-बुद्धि का नाश

निर्वैर: सर्वभूतेषु, ये लक्षण हैं। भगवान का कार्य जब हम करने लगते हैं, तब इस प्रकार से भगवान का कार्य प्रगट होता है। हम कब भगवान का कार्य कर रहे हैं, ये उसके जानने के लक्षण हैं। हम कैसे जानें कि हम ठीक-ठीक भगवान का कार्य कर रहे हैं? प्रत्यक्षत: हम साधुता की वृत्ति का पोषण करते हैं। दुर्जनता की वृत्ति का विरोध करते हैं, उसका नाश करने का प्रयत्न करते हैं और धर्म की संस्थापना का भी भरपूर प्रयास करते हैं। यह सब जो हम कर रहे हैं, यह वास्तव में भगवान के ही कार्य हैं, यह जानने का उपाय क्या है? इसका लक्षण क्या है, जिससे हम जान सकें कि हम सचमुच भगवान का काम करते हुए रास्ते पर आगे बढ़ रहे हैं? इसके लिए लक्षण बताया कि जब तुम्हारे मन में यह भाव आयेगा कि संसार में भगवान को छोड़कर दूसरा कोई परम नहीं है। एकमात्र कोई परम है, तो वह भगवान ही हैं, ऐसी वृत्ति तुम्हारे भीतर आ जायेगी। यह पहला लक्षण है। मनुष्य जब समझने लगे कि एकमात्र भगवान ही सर्वस्व हैं और वे ही मेरे अपने हैं, तब उनके प्रति भक्ति का भाव आएगा। जैसे हमने जान लिया कि अमुक व्यक्ति शासक है। उसकी इच्छा से ही सब कुछ होता है। तो हम जो भी कार्य करना चाहेंगे, वह उसकी इच्छा और अनुमति के बिना कर ही नहीं पाएँगे। ऐसा मालूम हो जाने पर स्वाभाविक ही एक भक्ति का भाव, एक अनुरंजन का भाव उस व्यक्ति के प्रति उदित होगा। जब हमने जान लिया कि भगवान की इच्छा से ही सब कुछ होता है, तो वही परम है, तो अपने आप ही उनके चरणों में भक्ति उमड़ती है। श्रीभगवान को सर्वव्यापी और अपना निजी मान लेना दूसरा लक्षण है। भगवान को ही सर्वस्व और उन्हीं को एकमात्र परम मान लेने पर उनके चरणों में भक्ति हो जाना तीसरा लक्षण है। हम सांसारिक वस्तुओं की जो भजना करते हैं वह दैनन्दिन कम होती जाती है और ईश्वर-चरणों में भक्ति, भगवच्चरणों की वन्दना बढ़ती जाती है। हम ईश्वर को अधिकाधिक याद करने लगते हैं। भजन करना अर्थात् रसन या रसास्वादन करना। **किं नाम भजनं, भजनं नाम रसनम्।** पशु अपने खाए हुए भोजन की जुगाली करता रहता है, उससे रस निकलता रहता है। उसे अच्छा लगता है। इसी तरह रस निकालने को भजन कहते हैं। भगवान के बारे में हम जो भी सुनते हैं, चिन्तन के द्वारा उसका रस लेने का प्रयत्न करते हैं, इसको ही भजन कहते हैं। रस से भगवान के चरणों में अनुरक्ति बढ़ती है। भगवान ने बताया कि मत्परम: का अर्थ यह है कि तुम मेरे परायण हो जाओ। मुझीको सर्वस्व मानो। इससे अपने आप तुम्हारी भक्ति बढ़ेगी। भक्ति बढ़ने का लक्षण सङ्गवर्जित: होना भी है। आसक्ति का त्याग होगा। वे कहते हैं, 'मेरे चरणों में भक्ति आने पर जो तुम्हारी आसक्ति के केन्द्र हैं, वे धीरे-धीरे दूर होते जाएँगे और अन्तत: नष्ट हो जाएँगे।' यह कैसे जाना जा सकता है कि आसक्ति के केन्द्र दूर हो रहे हैं? तो उत्तर में कहा गया – **निर्वैर: सर्वभूतेषु** – सर्वभूतों में एक निर्वैरता का भाव, पक्षपातहीनता का भाव आ जाता है। जहाँ पर आसक्ति है वहाँ पर पक्षपात का भाव है। एक से राग करेंगे, तो दूसरे से द्वेष उत्पन्न होगा। आसक्ति से ही प्रेम और घृणा उत्पन्न होते हैं। घृणा से वैर उपजता है। सङ्गवर्जित: का लक्षण यह है कि जब सर्वभूतों में निर्वैरता का भाव आने लगे, हम सबको अपना मानने लगें, तब स्वत: ही ऐसा भाव आ जाएगा कि कोई हमारा वैरी नहीं है, कोई पराया नहीं है, सभी अपने हैं।

माँ सारदा का अन्तिम उपदेश यही था। माँ अन्तिम घड़ियाँ गिन रही थीं। एक महिला रोते हुए उनसे कह रही थी, 'माँ! तुम चली जाओगी, फिर हमारी देख-रेख कौन करेगा? हम किसकी शरण में जाएँगी?' तब माँ ने उससे कहा, 'देखो बेटी! अगर संसार में शान्ति पाना चाहती हो, तो किसी को पराया मत समझो। सभी अपने हैं बेटी! 'सभी अपने हैं' यह एक अद्‌भुत वाक्य है। किसी को पराया मत समझो। सभी अपने हैं। किसी का दोष मत देखो। दोष देखने ही हैं, तो अपने देखो। तब संसार में सभी अपने हैं, यह भाव अपने आप आ जाएगा। जब आसक्ति दूर होती है, जब भगवान के चरणों में भक्ति पनपती है, तब अपने आप एक निर्वैरता का भाव, पक्षहीनता का भाव आ जाता है।

शेष भाग पृष्ठ ४५४ पर

साधुओं के पावन प्रसंग (५५)

स्वामी धीरेशानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

कोई नहीं जानता शुकदेव ने दाँत-दर्द और पेट-दर्द से कैसा दुख पाया था। कोई नहीं जानता कि उस समय उन्होंने कैसा व्यवहार किया था। चाहे कोई भी हो, दुख से कोई भाग नहीं सकता। मैं अष्टावक्र संहिता पढ़ता हूँ। वह आदर्श के रूप में अच्छा है, किन्तु उसके अनुसार जीवन व्यतीत करना बहुत कठिन है। निश्चय ही यह पुस्तक नये लोगों के लिए बहुत आकर्षक है। यह बहुत प्रेरणादायक है। वैसा विवरण सही है।

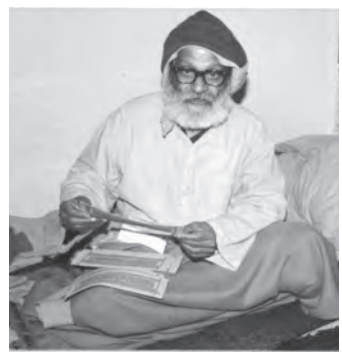

स्वामी धीरेशानन्द

लोग यह जानना चाहते हैं कि महान व्यक्ति कैसे कष्ट सहते और कैसे व्यवहार करते हैं। इन चीजों को छिपाने के लिए इनका दमन कर देते हैं। घाव के ऊपर सोने की चमड़ी मढ़ देते हैं। लोग जीवनी लिखते हैं और उसमें उनकी अच्छी चीजों को ही प्रकट करते हैं। एक समय अमेरिका में लोग जीवनी लिखने के प्रति अनिच्छुक थे। क्योंकि यह केवल एक प्रकार का प्रशंसात्मक जैसा था। इस प्रकार के विवरण को कहते हैं – all bunk (twaddle) – सभी चारपाई के सामानों को फर्श पर रख दो, जिससे सभी लोग देख सकें। अच्छा और बुरा दोनों ओर का दिखाना चाहिए। इसीलिए अमेरिका में लोग जीवनी इस प्रकार से लिखने लगे, जिससे द्वन्द्व कम हो।

यह विषय क्या चिन्तनीय नहीं है? अनेक बातें ही तो हमलोग छिपाते हैं। ठाकुर के जीवन में ही हमलोग देखते हैं कि उन्होंने अपने मनुष्य स्वभाव को कितने बार प्रकाशित किया है। किन्तु लोग केवल ईश्वर स्वरूप को ही देखना चाहते हैं। ठाकुर कामनावश छटपटा रहे हैं, मिट्टी में लोटपोट होकर मुँह रगड़ रहे हैं और कह रहे है, ''माँ यदि कुछ होगा तो गला में छुरी लगा लूँगा।'' इससे हमलोंगो के भीतर कितनी आशा का संचार हुआ और कितना सीखने को मिला। इस घटना को रामचन्द्र दत्त के दल जैसे वाले भक्त होते, तो इसको छिपा देते। किन्तु छिपाने से लाभ क्या? बड़े ऋषि-मुनियों का भी पतन हुआ है। पुनः वे लोग तपस्या के बल से उठ खडे हुए हैं। इससे भी एक प्रकार की शिक्षा प्राप्त हुई। किसी को भी अपने आप पर अति विश्वास नहीं करना चाहिए। यह विचार करना होगा कि उनकी रक्षा करने से ही रक्षा हो सकती है, नहीं तो सर्वनाश है। इसीलिए उनकी शरणागति ही एकमात्र उपाय है।

सत्संग रत्नावली के विषय में मैंने पहले ही अपना मत लिख दिया है। सुना हूँ कि कोई-कोई मुझे शंकरवादी कहते हैं। यह तो केवल ईश्वर ही जानते हैं कि कौन शंकरवादी और कौन रामकृष्णवादी। मैं तो शंकर और रामकृष्ण में कोई भेद नहीं देखता। ठाकुर ने साधारण लोगों के लिए भक्ति पर बहुत जोर दिया है। शंकर ने भी कितनी स्तुतियों की रचना की है।

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः।।

(श्रीविष्णुषट्पदी, ३)

शंकर के असंख्य भक्तिमूलक स्तुति के अवदान को कोई कैसे अस्वीकार करेगा? ठाकुर ने ही तो शंकर का अद्वैतवाद स्वामीजी को सिखाया है, जिसे स्वामीजी ने संसार में वितरण किया है। स्वामीजी ने कहा है, ''ठाकुर साधारणतः साधारण लोगों को द्वैतवाद की ही शिक्षा देते थे। उन्होंने कभी भी अद्वैतवाद सर्व-साधारण को नहीं सिखाया, लेकिन उन्होंने इसे मुझे सिखाया।'' स्वामीजी का वज्रघोष, उठो,

जागो तथा और स्वप्न मत देखो। साहसी बनो और सत्य का सामना करो। इसके साथ एक हो जाओ। स्वप्न का नाश होने दो और यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते, स्वप्न देखना चाहते हो, तो सत्य का स्वप्न देखो, जो शाश्वत प्रेम और मुक्ति में उपलब्ध है। वे लोग तो स्वामीजी को भी फिर शंकरवादी कहेंगे। जो भी हो, लोगों के विभिन्न विचार होते हैं।

''मैंने सुना, रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान बन्द करना पड़ा। विराट कार्य है। सम्भालना असम्भव हो गया है। यहाँ पर (कनखल) भी कार्य बढ़ गया है तथा और भी बढ़ रहा है। काशी सेवाश्रम में सुना है कि अभी २४ घण्टा के लिए आर्म सिक्युरिटी गार्ड को रखना पड़ा है। हमारा 'शिव ज्ञान से जीव सेवा' का क्या यही परिणाम हुआ? स्वामीजी की वाणी मिथ्या नहीं हो सकती। हमलोग उनके योग्य उत्तराधिकारी नहीं हैं। भविष्य में सभी आयेंगे। वे लोग ठाकुर-स्वामीजी की वाणी को सही आकार देंगे। ऐसा मुझे लगता है।

''अवतार के आने से तत्कालीन देश में, समाज में विभिन्न व्यक्तिगत और सामूहिक भाव से विविध प्रकार की गड़बड़ी देखी जाती है। तत्पश्चात् एक नया समाज गठित होता है। उनका आना व्यर्थ नहीं होगा। फिर भी हमलोग उस स्वर्णयुग का आगमन नहीं देख पायेंगे। हमलोगों की आयु उतनी नहीं रहेगी।

''हमलोंगो के ही अनेक साधु सब छोड़-छाड़कर हृषिकेश, उत्तरकाशी में दाल-रोटी खाकर तपस्या कर रहे हैं। **पूजनीय महापुरुष महाराज ने मुझसे कहा था कि यदि हमारे आश्रम तपस्या के अनुकूल नहीं हैं, तो फिर इन आश्रमों की क्या सार्थकता है?** ऐसा लगता है कि हमलोगों ने यथार्थ दृष्टि खो दी है। आश्रमों में अभी रेडियो, टी.वी., अड्डा, अच्छा खाना-पहनना के साथ कुछ कार्य, यही जीवन का लक्ष्य हो गया है। आरामदायक जीवन हो गया है। प्रभु अपने संघ की रक्षा करें और हमलोगों को सद्बुद्धि दें। यही प्रार्थना है। अपने संघ की वे रक्षा करेंगे। सामूहिक उत्थान-पतन प्राकृतिक नियमानुसार आयेगा और जायेगा। समबुद्धा संयुक्ता।

१६/११/१९९१, कनखल सेवाश्रम

''पिछले वर्ष मेरे सान्निध्य में तुमको बहुत आनन्द प्राप्त हुआ, ऐसा तुमने लिखा है। ये सब अनावश्यक बातें हैं। मेरे भीतर कोई गुण नहीं है, न विद्याबुद्धि, न साधुत्व और न अन्य कुछ। तो भी तुमलोग ऐसा क्यों कहते हो? ऐसा लगता है कि अकृत्रिम स्नेह-प्रेम के कारण ही तुम सब को प्रेम करते हैं। वह अच्छा है। प्रभु तुम्हारा सर्वांगीण कल्याण करें।

''तुमने शीतकाल में स्थान परिवर्तन के लिए कहीं जाने के लिए कहा है और उसका खर्च तुम वहन करोगे। तुम्हारे इस प्रेम से मैं अभिभूत हो गया। इस समय मन में इच्छा होने पर भी शरीर में सामर्थ्य नहीं है। अकेले कहीं जाने से भय होता है। आँखों से कम देखता हूँ और कान से भी कम सुनता हूँ। चढ़ने-उतरने में भी दुर्बलता का अनुभव करता हूँ। ८५ वर्ष चल रहा है। शरीर को दोष नहीं दे सकता, अभी मैं **'अंगं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहिनं जातं तुण्डम्। वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं'** इस अवस्था का ही अनुभव कर रहा हूँ। बोलने की इच्छा होती है – **उत्थाय हृदि लीयन्ते वृद्धानां च मनोरथाः**। इसलिए यह आशीर्वाद दो, जिससे अधिक न भोगकर शीघ्र ही इस देह के साथ ही जगत्-स्वप्न शीघ्रताशीघ्र टूट जाये। तब – **मदज्ञानोदितं विश्वं मय्येव लयमागतम्। अपरोक्ष चिदानन्द साम्राज्यमधुनास्म्यहम्।।** यह जितने दिन तक नहीं होता, उतने दिन तक – **मय्यनन्ताचिद्सबोधावाश्चर्यं जीवविचयः। समुल्लसन्ति खेलन्ति परिवशन्ति स्वभावतः।। मय्यनन्ताचिद्सबोधो विश्वविच्यादि कल्पना। उदेतु वास्तमायातु न मे वृद्धिर्न मे क्षतिः।।**

''जीवन-प्रभात में श्रीमद् अध्यात्म रामायण पढ़कर मुग्ध हुआ था। तभी से ही इच्छा थी कि इस अपूर्व ग्रन्थ का बंगला में अनुवाद करने से अच्छा होता। बंगला में उस समय इस पुस्तक को नहीं देखा था। जीवन सन्ध्या में इस ग्रन्थ का बंगला में अनुवाद आरम्भ किया हूँ। चार भाग में से तीन भाग हो गया है। बाकी जो है, लगता है कि उनकी इच्छा से हो जायेगा। फिर भी संशोधन करना, प्रुफ इत्यादि मुझसे नहीं होगा। यदि तुमलोग कोई करोगे तो होगा। नहीं तो यहाँ तक ही समाप्त। श्लोक का अनुवाद भाषा की सरलता, शुद्धता, माधुर्य इत्यादि बचाकर करना बहुत कठिन है। भावानुवाद सरल है। उसमें स्वयं के अनुसार शब्दों का चयन किया जा सकता है। जो भी हो, अन्त समय में राम-चरित का मनन हो रहा है। इतना ही मेरा लाभ है। कहीं-कहीं पढ़ते-पढ़ते मन अभिभूत हो जाता है। ठाकुर ने इस पुस्तक की बहुत प्रशंसा की है। ज्ञान-भक्ति का समन्वय इस प्रकार का और कहीं नहीं देखा जाता। एक ने कहा था कि केशव बाबू

ने ही ज्ञान-भक्ति का समन्वय किया है। ठाकुर ने सुनकर कहा था कि यदि ऐसा है, तो अध्यात्म-रामायण क्या है? अर्थात् अध्यात्म रामायण में वह बात तो बहुत समय पूर्व ही प्रसिद्ध है। ठाकुर की बातों से इस पुस्तक के प्रति सम्पूर्ण जीवन एक प्रकार का आकर्षण था और है। रघुवीर हमारे ठाकुर के कुलदेवता हैं। उनके प्रति ठाकुर का विशेष लगाव था। पूजनीय मति महाराज (स्वामी शिवस्वरूपानन्द) का शरीर-त्याग हो गया। बहुत कष्ट पा रहे थे। बहुत गुरु-सेवा की थी। रात्रि में कुता भों-भों कर रहा है। महापुरुष महाराज को नींद नहीं आ रही थी। वे हाँफ (साँस का कष्ट) रहे हैं। महाराज ने कहा, ''ऐ मति ! कुता क्यों भोंक रहा है?'' मति महाराज ने कहा, ''वह एक सन्देश खाना चाह रहा है।'' महापुरुष महाराज ने कहा, ''साला सन्देश खायेगा। नहीं, मत देना। अच्छा जाओ, एक सन्देश दे कर आ जाओ।'' इस प्रकार की कितनी लीलाओं के साक्षी मति महाराज थे।

१/१०/१९७७, काशी सेवाश्रम, १० नम्बर वार्ड

मैं प्रात: नाश्ता के पश्चात् धीरेशानन्द जी महाराज के कमरे में गया। वे बिस्तर के ऊपर बैठकर जप-ध्यान और पढ़ाई-लिखाई कर रहे थे। कमरा पुस्तकों से भरा हुआ था। साधन-भजन और भगवत् कृपा के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा, ''देखो, कृपा चार प्रकार की होता है – गुरुकृपा, ईश्वरकृपा, शास्त्रकृपा और आत्मकृपा। गुरुकृपा करके दीक्षा देकर साधन-पथ दिखा देते हैं। सेवा और सुश्रूषा से प्रसन्न होकर गुरु शिष्य को तत्त्व का उपदेश करते हैं। यही गुरुकृपा है।

''श्रद्धा-प्रेम आदि गुण परिपूर्ण रूप से विकास होने पर शास्त्र का मर्म मुमुक्षु के हृदय में विकसित होता है।

''साधक का पुरुषार्थ ही आत्मकृपा है। यही प्रधान है। आत्मकृपा होने से दूसरी अन्य कृपा साधक के लिए सहायक होती है।

''आत्मकृपा होने से ईश्वर की भी कृपा होती है। ईश्वरकृपा को छोड़कर सब पुरुषार्थ व्यर्थ होता है। अतएव निरभिमान होकर साधन-भजन द्वारा ईश्वरकृपा की प्राप्ति के लिए प्रयास करना कर्तव्य है। ठाकुर ने तो कहा है – कृपा रूपी हवा तो सदा बह रही है, तुम पाल सीधा कर लो।

''देखो, तुमको एक बात बताता हूँ – प्रतिदिन शास्त्र पढ़ने से शास्त्र-दृष्टि खुल जाती है। तब मर्मार्थ बोध होता है। ज्ञान का नेत्र खुल जाता है। हरि महाराज की यही शास्त्र-दृष्टि खुल गयी थी। वे शास्त्र के ऊपर सभी समय नवीन प्रकाश डालते थे।''

उसी दिन सुबह स्वामी धीरेशानन्द जी महाराज ने वेदान्त के व्यावहारिक पक्ष का उदाहरण पर उदाहरण देकर चर्चा की, ''देखो, ब्रह्म को मुँह के द्वारा वर्णन नहीं किया जाता, 'अवचन' अर्थात् मौन द्वारा ही इंगित किया जाता है। गुरु वार्धव शिष्य वास्कली को उपदेश देते समय कहते है उपशान्तोऽहमात्मा अर्थात् आत्मा उपशान्त-स्वरूप है। योगवाशिष्ठ में है कि वशिष्ठ रामचन्द्र को विविध उपदेश देकर मौन हो जाते हैं। उस समय राम कहते हैं, 'इतना उपदेश न देकर शुरु में ही मौन रहने से ही हो जाता।' प्रत्युत्तर में वशिष्ठ ने कहा, 'तब तो लोग कहते कि मैं मूर्ख हूँ, कुछ भी नहीं जानता। इसीलिए सब बता कर अभी मौन बैठा हुआ हूँ। तत्त्व को मुँह से नहीं कहा जाता। मौन रहकर तुम इस रहस्य को जान पाओगे।'

''सत्संग नहीं करने से मन भगवत्-मुखी नहीं होता। सत्संग का मुख्य अर्थ सत्य का संग अर्थात् सत्स्वरूप परमात्मा का संग करना है। उनके संग एक हो जाना अर्थात ब्रह्माकार वृत्ति में स्थित होना है। इसके साथ सत्संग शब्द का गौण अर्थ है सत्स्वरूप परमात्मा के चिन्तनशील साधुओं का संग। तत्त्वज्ञ महापुरुषों द्वारा रचित ग्रन्थ और उनकी अनुभूतिमय वाणी तथा कथन का अध्ययन करने को भी सत्संग कहा जाता है।''

महाराज ने मनुष्य के भीतर और बाहर की अशान्ति के प्रसंग में यह उदाहरण दिया, ''देखो, एक कुत्ता के सिर में घाव है तथा उसमें कीड़ा हो गया। कुत्ता पिंजरा के भीतर है। वह केवल भीतर के कष्ट का अनुभव कर रहा है। कुत्ता जब वहाँ से बाहर आ गया, तब उसके उपर मक्खियों ने बैठना आरम्भ कर दिया। कुत्ता उस समय भीतर और बाहर के कष्ट और अशान्ति का अनुभव करता है। उसी प्रकार निर्जन में मनुष्य के मन में भोगवासना के प्रति कामना रहने से अशान्ति से वह छटपटाता है। वह मनुष्य जब लोगों के सामने आकर भोगवस्तु के सामने होता है, तब अतृप्त लालसा को पूरा करने के लिए पागल हो जाता है। भीतर का मन और बाहर की इन्द्रिय उसको अशान्ति से डुबाते-उतराते रहते हैं। उपाय है साधुसंग। **'क्षणमिह सज्जनसंगतिरेका भवति भवार्णवतरणे नौका।'**

''विवेक-वैराग्य न होने से शास्त्र पढ़ना वृथा है। वेदान्तशास्त्र में अधिकारी पर बहुत बल दिया गया है। उत्तम गुरु जितना भी उपदेश दे, शिष्य यदि योग्य नहीं होता है, तो उपदेश फलदायी नहीं होता। मनुष्य की बुद्धि चार प्रकार की होती है। एक पत्थर जैसी, दूसरी रबर जैसी, तीसरी चमड़ा जैसी, चौथी तेल जैसी।

''एक – पत्थर जैसी बुद्धि उसको किसी भी प्रकार से समझाया नहीं जा सकता। पत्थर के भीतर जैसे लोहा का कील नहीं घुसता, उसी प्रकार स्थूल बुद्धि वाला मनुष्य तत्त्व की बातों की धारणा नहीं कर पाता है।

''दो – रबर जैसे। रबर में लोहा का कील घुस जाता है, परन्तु हाथ उठाने से बाहर निकल जाता है। उसी प्रकार रबर जैसी बुद्धि वाले मनुष्य को क्षणिक बोध होता है, परन्तु पुन: भोग-वासना में भूल जाता है।

''तीन – चमड़ा में लोहा का कील जितना भीतर जाता है, उतना ही रहता है। उसी प्रकार चमड़ा तुल्य बुद्धियुक्त मनुष्य जितना उपदेश सुनता है, उतना ही समझता है।

''चार – तैलसदृश बुद्धि सर्वोत्कृष्ट है। एक गमला जल में एक बूँद तेल डालने के साथ-ही-साथ वह जल के ऊपर तैरता रहता है। उसी प्रकार ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति थोड़ा-सा उपदेश सुनने पर भी मनन के द्वारा सम्पूर्ण जान पाता है।''

तदुपरान्त महाराज ने उस दिन विविध प्रसंग पर वार्तालाप किया। उन्होंने कहा ''एक दिन राजा महाराज को करुणानन्द ने कहा, 'महाराज, मुझे ब्रह्मज्ञान हुआ है।' महाराज ने अपने मुँह पर हाथ रख के कहा, 'यह बात किसी से मत कहना।' बाबूराम महाराज वहीं पर थे। उन्होंने पूछा, 'अरे ! उस विषय में तुमको क्या कोई संदेह है? यदि है, तो नहीं हुआ है, नहीं हुआ है, नहीं हुआ है।'

''मन रूपी दर्पण को बाहर करने से तीर्थ, देव-देवी के दर्शन कर रहे हो। उसी दर्पण को भीतर ले जाओ, तो देखोगे आत्मदर्शन होगा।

''देखो, आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए 'आवृत्तचक्षु:' होना होगा। सब इन्द्रियों की बहिर्मुखी वृत्ति को बन्द करने से मन शान्त हो जायेगा। इन सब वृत्तियों के निरोध होने पर द्रष्टा के स्वरूप में अवस्थान होता है। इस cosmic plane में मन के जाने पर बहुत आनन्द का अनुभव होगा।

''देखा जाता है कि अनेक लोग जप-ध्यान कर रहे हैं, आध्यात्मिक जीवन-यापन कर रहे हैं, परन्तु भीतर में राग-अभिमान रहता है। इनको ज्ञान नहीं होता। ठाकुर कहते थे, 'साधु का राग पानी पर दाग।' ज्ञानी के मन में किसी कारण से क्रोध होने पर साथ-ही-साथ मिट जाता है। अज्ञानी तीन पुरखों तक शत्रुता करता है।

वेदान्त-शास्त्र में ज्ञानियों का भी प्रकार है – जैसे ब्रह्मविद्, ब्रह्मविद्वर, ब्रह्मविद्वरियान, ब्रह्मविद्वरिष्ठ। फिर भी एक बार ज्ञान होने से ही हो जाता है। एक मुहूर्त के लिए भी यदि तत्त्व का ज्ञान होता है, तो वह अनुभूति का आनन्द चिरन्तन रहता है।

''देखो, पृथ्वी में सभी मुमुक्षु हैं। सभी दु:खनिवृत्ति और आनन्द-प्राप्ति के लिए प्रयत्न कर रहे है। किन्तु माया-मोह के वश होकर विषयानन्द को जीवन का लक्ष्य करके अशान्ति में घूम रहे हैं। धक्का खाने से ही मनुष्य सही रास्ते पर आता है।

''वेदान्त के प्रकरण ग्रन्थों में विद्यारण्य मुनी का पंचदशी ग्रन्थ उत्कृष्ट है। तुम वह पुस्तक अच्छी तरह से पढ़ना। अच्छा, क्या तुम सन्धि जानते हो? योगवासिष्ठ में है जाग्रत अवस्था और निद्राप्राप्ति आदि काल में जो अवस्था रहती है, वह भाव सदा स्मरण रखने से प्रत्यक्ष अक्षय आनन्द लाभ होता है। (१०/८) उस अवस्था में कोई वृत्ति नहीं रहती है। उस समय केवल अनुभव स्वरूप साक्षिचैतन्य प्रकाश विद्यमान रहता है। यही सन्धिकाल है। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ४५० का शेष भाग

ये सब लक्षण अन्योन्याश्रित हैं। भगवान कहते हैं, 'अर्जुन! जब ऐसा हो, तब समझ लेना कि तेरा कर्म मेरे ही लिए, मेरी ही प्रीति के लिए हो रहा है।'

संसार में हमारे जो दायित्व हैं, उनको तो स्वयं भगवान ने पहले ही पूरा कर दिया है। वे ही सब कुछ समझते हैं। हम तो केवल निमित्तमात्र बनते हैं। हम केवल लोगों को खोजते रहते हैं। केवल खोजने का काम हमारा है। इसीलिए भगवान ने अर्जुन से कहा था, 'तू बस निमित्त बन, अर्जुन! सब कुछ मेरे द्वारा किया जा चुका है।' यही भाव हमारे भीतर दृढ़मूल हो जाए, इसी के लिए यह विश्वरूप-दर्शन है।

○○○ (ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त)

रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा में विविध कार्यक्रम आयोजित हुये

स्वामी विवेकानन्द की शिकागो से भारत वापसी और रामकृष्ण मिशन की स्थापना की १२५वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा में १० अप्रैल, २०२३ से २ जून, २०२३ तक विविध कार्यक्रम आयोजित किये गये। १० अप्रैल को आर्मी पब्लिक स्कूल, अलमोड़ा, ११ अप्रैल को शारदा पब्लिक स्कूल, अलमोड़ा, १२ अप्रैल को सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अलमोड़ा में सेमीनार हुये, जिसमें मुख्य वक्ता प्रो. मिहिर कान्ति दास, अतिथि प्रोफेसर, गतिशक्ति विश्वविद्यालय, बड़ोदरा थे।

१ मई, २०२३ से १५ मई तक चित्रकला, भाषण, निबन्ध, पाठ-आवृत्ति आदि विभिन्न प्रतियोगितायें आयोजित हुईं। रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर के सचिव स्वामी आत्मश्रद्धानन्द जी के ५ मई से १० मई तक 'शिवानन्द हाल' में 'आत्मबोध' पर और ७ मई को ६ बजे कैन्टोमेन्ट ऑडिटोरियम में 'स्वामी विवेकानन्द का संदेश' पर व्याख्यान हुये। १२ मई से १७ मई तक 'शिवानन्द हॉल' में रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ के स्वामी वेदनिष्ठानन्द के कठोपनिषद पर प्रवचन हुये। १८ मई को फलहारिणी काली पूजा हुई।

१९ मई को कैन्टोमेन्ट मन्दिर और २० मई को 'शिवानन्द हॉल' में रामकृष्ण मठ, भुज के अध्यक्ष स्वामी सुखानन्द जी के रामचरित-मानस पर प्रवचन हुये। १९ मई से २१ मई तक आध्यात्मिक शिविर आयोजित हुई, जिसमें अद्वैत आश्रम, मायावती के अध्यक्ष स्वामी शुद्धिदानन्द, स्वामी सुखानन्द, स्वामी राघवेन्द्रानन्द ने व्याख्यान दिये। सन्ध्या में एम. एस. युनिवर्सिटी, बड़ोदरा के छात्र सुरेश गढ़वी, विशाल शर्मा और यश पटेल ने भक्ति-संगीत का गायन किया।

२१ मई को १० से ४ बजे तक जी.बी.पन्त विश्वविद्यालय में सेमीनार हुआ, जिसमें स्वामी निखिलेश्वरानन्द, डॉ. एम.एस. चौहान, स्वामी दयाधीपानन्द, स्वामी वेदनिष्ठानन्द, डॉ. एस. के. कश्यप, डॉ. सलिल तेवारी ने व्याख्यान दिया।

२२ जून को शासकीय नर्सिंग कॉलेज, अलमोड़ा में एक संगोष्ठी हुई, जिसमें स्वामी वेदनिष्ठानन्द जी और स्वामी दयाधीपानन्द जी ने सभा को सम्बोधित किया और छात्राओं के प्रश्नों के उत्तर दिये।

२३,२४ मई को सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय में १० से ५ बजे तक दो दिवसीय सेमीनार हुआ, जिसमें स्वामी निखिलेश्वरानन्द, स्वामी वेदनिष्ठानन्द और सोबन सिंह विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. जगतसिंह बिष्ट, प्रो. भीमा मनराल और डॉ. चन्द्रप्रकाश फुलोरिया, पद्मश्री डॉ. ललित पाण्डेय ने सभा को सम्बोधित किया। रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा के अध्यक्ष स्वामी ध्रुवेशानन्द जी महाराज ने स्वागत भाषण दिया और देवभूमि उत्तराखण्ड और अलमोड़ा के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाला।

आज ही रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी सुहितानन्द जी महाराज का रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा में शुभागमन हुआ।

२४ मई को श्रीरामकृष्ण देव की विशेष पूजा, हवनार्चना हुई। साधु-भंडारा हुआ। प्रस्तावित विवेकानन्द भवन का पूज्यपाद स्वामी सुहितानन्द जी महाराज ने भूमि-पूजन किया। सोबन सिंह विश्वविद्यालय में आयोजित सेमीनार के समापन दिवस में मुख्य अतिथि पूर्व मुख्यमन्त्री और राज्यपाल श्री भगतसिंह कोश्यारी, रामकृष्ण मिशन, दिल्ली के सचिव स्वामी सर्वलोकानन्द, स्वामी विश्वात्मानन्द, स्वामी अच्युतेशानन्द, विश्वविद्यालय के कुलपति जगतसिंह बिष्ट आदि ने सभा को सम्बोधित किया।

शाम ४ से ६ बजे तक कैन्टोमेन्ट आफिसर्स मेस में पूज्यपाद स्वामी सुहितानन्द जी महाराज, स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी, स्वामी अच्युतेशानन्द जी ने व्याख्यान दिया। शाम ७.३० बजे शिवानन्द हाल में साधु-सम्मेलन हुआ, जिसमें रामकृष्ण अद्वैत आश्रम के अध्यक्ष स्वामी विश्वात्मानन्द, स्वामी अच्युतेशानन्द, स्वामी सर्वलोकानन्द, स्वामी ज्ञानलोकानन्द, स्वामी ध्रुवेशानन्द, स्वामी बलभद्रानन्द, पूज्यपाद स्वामी सुहितानन्द जी महाराज ने साधु-जीवन पर उत्कृष्ट व्याख्यान दिये।

२५ मई को प्रात:काल स्वामी सुहितानन्द जी महाराज ने

ठाकुर की मंगल आरती की। उसके बाद सन्तों ने ठाकुर मंदिर की परिक्रमा करते हुये उषा-कीर्तन किया। ९.३० बजे करबला में 'विवेकानन्द द्वार' का शिलान्यास पूज्यपाद स्वामी सुहितानन्द जी, स्वामी बलभद्रानन्द जी और उत्तराखण्ड के पूर्व मुख्यमन्त्री और महाराष्ट्र के पूर्व राज्यपाल श्री भगत सिंह कोश्यारी जी ने किया। ११ बजे काकड़ीघाट ज्ञानवृक्ष का दर्शन और व्याख्यान हुआ, जिसमें पूज्यपाद स्वामी सुहितानन्द जी महाराज और स्वामी बलभद्रानन्द जी महाराज ने प्रेरक प्रवचन दिये। गवर्नमेन्ट मेडिकल कालेज में ४ से ६ बजे तक सेमीनार हुये, जिसमें स्वामी ज्ञानलोकानन्द और स्वामी दयाधीपानन्द ने व्याख्यान दिये।

२६ मई को निवेदिता काटेज (ओकले हाउस) में सन्ध्या ४.४५ बजे संगोष्ठी हुई, जिसमें सर्वप्रथम पूज्यपाद प्रेसीडेन्ट महाराज स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज के आशीर्वचन को स्वामी ज्ञानलोकानन्द ने पढ़कर सुनाया। पूज्यपाद स्वामी सुहितानन्द जी महाराज, स्वामी अच्युतेशानन्द जी, स्वामी चन्द्रकान्तानन्द जी और विनोद साह जी ने व्याख्यान दिये। स्वामी ध्रुवेशानन्द जी ने स्वागत और निवेदिता शाह ने धन्यवाद दिया। २७ मई को गवर्नमेन्ट इंटर कॉलेज, अलमोड़ा में युवा शिविर और पुरस्कार वितरण समारोह आयोजित हुआ, जिसमें स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी, स्वामी ज्ञानलोकानन्द जी और स्वामी अच्युतेशानन्द जी ने युवकों को सम्बोधित किया। आज ही सबको प्रातः कसार देवी, पाताल देवी और शाम को दोनागिरी का दर्शन कराया गया।

२८ मई को पूज्यपाद स्वामी सुहितानन्द जी महाराज ने दीक्षार्थियों को आश्रम में दीक्षा प्रदान की। प्रातः ८ बजे विवेकानन्द उत्तराखण्ड परिक्रमा के क्रम में मायावती हेतु सन्तों और भक्तों ने २७ गाड़ियों से प्रस्थान किया। एक गाड़ी में सबसे पहले स्वामीजी की मूर्ति थी। २९ मई को मायावती आश्रम, ऑडिटोरियम में सभा हुई। स्वामीजी से सम्बन्धित स्थानों का परिदर्शन हुआ। १२ बजे श्यामलाताल हेतु प्रस्थान किया गया। २९ मई को १२ बजे गवर्मेन्ट इन्स्टिट्यूट ऑफ होटल मैनेजमेन्ट, अलमोड़ा में एक सेमीनार आयोजित हुई, जिसकी अध्यक्षता पूज्यपाद स्वामी सुहितानन्द जी महाराज ने की। स्वामी विश्वमयानन्द, स्वामी चन्द्रकान्तानन्द और स्वामी ध्रुवेशानन्द जी ने सभा को सम्बोधित किया। ३० मई को १० बजे से १ बजे तक नेपाल स्थित ब्रह्मदेव मन्दिर का दर्शन कराया गया। टनकपुर में युवा-सम्मेलन हुआ। यात्रा ३१ मई को रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, हरिद्वार पहुँची।

१ जून को हरिद्वार-भ्रमण हुआ और रामकृष्ण मिशन, कनखल में सभा हुई, जिसमें आश्रम की स्थापना और कार्यों के सम्बन्ध स्वामी सौम्यानन्द जी ने बताया। २ जून को १० से १२ बजे तक ऋषिकेश में माँ गंगा का भव्य-दर्शन और चन्द्रेश्वर शिव का दर्शन किया गया। उसी परिसर में जहाँ स्वामीजी ने तपस्या की थी, अब उस गुफा में स्वामीजी की मूर्ति स्थापित है। भोजनोपरान्त देहरादून हेतु प्रस्थान किया गया। वहाँ लगभग ३ बजे बावड़ी शिव मन्दिर का दर्शन सबने किया, जो स्वामी तुरीयानन्द जी, शिवानन्द जी की तपस्थली है और स्वामीजी जाकर उनसे भेट किये थे। सन्ध्या ७.३० बजे रामकृष्ण मिशन, देहरादून आश्रम में सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें आश्रम के सचिव स्वामी असिमात्मानन्द जी महाराज ने स्वामीजी की उत्तराखण्ड में गढ़वाल यात्रा के बारे में विस्तृत रूप से बताया। अन्त में अलमोड़ा के अध्यक्ष स्वामी ध्रुवेशानन्द जी महाराज ने इस सम्पूर्ण कार्यक्रम में आगत अतिथियों, स्वयंसेवकों और सहयोगियों को धन्यवाद दिया। सन्तों ने यात्रा की सुसम्पन्नता पर 'रामकृष्ण शरणं' गाते हुये मन्दिर में ठाकुर के सामने आनन्द से नृत्य किया। इस प्रकार इस परिक्रमा के साथ यह महोत्सव सुसम्पन्न हुआ। इस यात्रा में २२०० प्रतियोगी छात्रों, सेमिनार में १३०० छात्रों, ९१ साधुओं, कनाडा, कैलिफोर्निया, जापान, बांग्लादेश और भारत के विभिन्न स्थानों के ८५ भक्तों, स्थानीय ८०० भक्तों ने भाग लिया।

सभी कार्यक्रम श्रीश्रीठाकुर, श्रीश्रीमाँ और श्रीस्वामीजी की असीम कृपा और आश्रम के अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी ध्रुवेशानन्द जी महाराज के निर्देशन, उद्यम और उनके सहयोगी सन्तों और स्वयंसेवकों के अथक परिश्रम से बड़े ही सुन्दर और व्यवस्थित ढंग से सुसम्पन्न हुये।